भक्त-पञ्चरत्न
सम्पादक
हनुमानप्रसाद पोद्दार

संक्षिप्त भक्त-चरित-माला, तृतीय पुष्प

भक्त-पञ्चरत्न

सम्पादक
हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीहरिः

निवेदन

यह 'संक्षिप्त भक्त-चरित-माला'का तीसरा पुष्प है। भारतके भावुक नर-नारियोंने पहले और दूसरे पुष्प (भक्त बालक और भक्त नारी) की पवित्र सुगन्धको बड़े ही प्रेम और चावसे ग्रहण किया और उससे उन्हें सात्त्विक सुख मिला। यह लोगोंके पत्रोंसे सिद्ध होता है। आशा है इस पुष्पकी शुद्ध सात्त्विक सुगन्धसे भी जनताको बहुत सुख मिलेगा।

इसमें प्रकाशित पाँचों आख्यायिकाएँ गुजरातीकी 'भक्त-चरित' नामक पुस्तकके आधारपर लिखी गयी हैं।

विनीत—

सम्पादक

प्रकाशकका निवेदन

भक्त-पञ्चरत्नकी पहली आवृत्ति बहुत जल्दी समाप्त हो गयी। कई जगह शिक्षा-विभागने इस पुस्तकको पढ़ाईके लिये स्वीकार किया है तथा कुछ ही वर्षोंमें इसकी छब्बीस हजार प्रतियाँ छप गयीं। इससे मालूम होता है कि यह लोगोंको अच्छी लगी है और इससे लाभ हुआ है। यह छठा संस्करण है। आशा है, जनता इससे लाभ उठावेगी।

श्रीहरिः

भक्त-पञ्चरत्न

निबन्ध-सूची

चित्र-सूची

ॐ
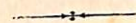
भक्त-पञ्चरत्न

रघुनाथ

कृष्णचन्द्र महापात्र बहुत बड़े धनी जमींदार थे। हाथी-घोड़े, दास-दासियोंकी उनके कोई कमी नहीं थी। अतिथि-अभ्यागतोंकी आनन्द-ध्वनिसे उनका आतिथ्यभवन सदा भरा रहता था। उनकी आदर्श पत्नी कमला बड़ी ही उदार और पतिव्रता थी। कमला वास्तवमें कमला-सदृश ही गुण-सौन्दर्यसे सम्पन्न थी। ईश्वर-कृपासे उनके रघुनाथ नामक सद्गुणी एक कुमार था। रघुनाथका स्वभाव लड़कपनसे ही बड़ा सुशील और नम्र था, वह सबसे मीठा बोलता था, उसके व्यवहारसे सभी लोग सन्तुष्ट रहते थे। रघुनाथ बारम्बार मन्दिर जाकर भगवान्की मूर्तिके सामने प्रणाम करता, कीर्तन करता, स्तुति करता और प्रदक्षिणा करता।

सतरह वर्षकी उम्र होनेपर माता-पिताने उसका विवाह कलावती-पुरके गंगाधर करण नामक धनी-मानी पुरुषकी अन्नपूर्णानाम्नी कन्यासे कर दिया। अन्नपूर्णा सात भाइयोंमें सबसे छोटी एक ही बहिन थी, इससे घरमें सभी उसका विशेष आदर किया करते थे। इसीलिये विवाह बड़ी ही धूमधामसे किया गया।

सुलक्षणा बहूको पाकर कमलाके कलेजेकी कलियाँ खिल उठीं। वह मानो स्वर्गसुखका अनुभव करने लगी। इस समय कमला सातों

प्रकारके सुखोंसे सुखी थी परन्तु विधाताका विधान कुछ और ही था। कुछ वर्षोंतक लगातार अकाल पड़े। कृष्णचन्द्र बड़े दयालु थे, उन्होंने लगान वसूल करना तो छोड़ ही दिया, पर अपने पास जो कुछ था, वह सब भी भूखे किसानोंकी सेवामें लगा दिया। घर खाली हो गया। मनुष्य इज्जत-आबरूके लिये एक बार जो खर्च लगाना आरम्भ कर देता है, बुरी स्थितिमें उससे कम लगानेमें उसे बड़ा संकोच होता है। इसी प्रकार कृष्णचन्द्रके भी खर्च ज्यों-का-त्यों लगता रहा, जमींदारी-पर ऋण हो गया। लगातारकी चिन्ताओंने कृष्णचन्द्रके स्वास्थ्यको बड़ा धक्का पहुँचाया, वह बीमार हो गये और एक दिन अपनेको मरण-शय्यापर पड़े हुए समझकर उन्होंने प्यारे पुत्र रघुनाथको पास बुलाया और उसकी गोदमें अपना मस्तक रखकर कातर-स्वरसे कहने लगे—'मेरे लाल रघुनाथ ! मैं जाता हूँ, मेरी एक बात रखना। जहाँतक हो सके मेरा ऋण चुकाना। देखना कभी किसीको धोखा देनेकी भावना मनमें न जाग उठे। भगवान् तुम्हारा कल्याण करेंगे।' कृष्णचन्द्रने इतना कहकर सदाके लिये आँखें मूँद लीं। पतिप्राणा कमला पुत्रसे विदा लेकर स्वामीके साथ सती हो गयी। रघुनाथके सिरपर कठोर वज्रपात हुआ !

जा विधि राखे राम ताहि विधि रहिये !

अन्नपूर्णा बड़े घरकी लड़की थी, वह प्रायः नैहरमें ही रहती थी। उसके पिता और भाइयोंके पास धन बहुत था, पर वे बड़े ही कृपण थे। इससे उन्होंने रघुनाथकी बुरी हालतका समाचार सुनकर भी मानो कुछ नहीं सुना ! कंजूसका धन किस कामका ? जो धनके कीड़े होते हैं, वे धन बटोरने और उसका रक्षण करनेमें ही लीन

रहते हैं। अपने प्यारे पुत्र, कन्या और श्रद्धास्पद माता-पिताका दारुण दुःख भी पत्थरका कलेजा किये सह लेते हैं परन्तु उन्हें एक पैसा देना नहीं चाहते ! रघुनाथ भी साधारण बालक नहीं था, वह तो उस सबसे बड़े पुरुषसे परिचित था, जिसकी तुलनामें उसके श्वशुर गंगाधर करण सूर्यके सामने एक जुगनू भी नहीं थे। रघुनाथ मदद माँगनेके लिये ससुराल नहीं गया। उसके पास जो कुछ था, सो सब बेचकर उसने पिताका सारा कर्ज चुका दिया। ससुरालसे दहेजमें जो कुछ मिला था, उससे देव-सेवाका नियमित प्रबन्ध कर वह एक फटा कन्था और कौपीन लेकर घरसे निकल पड़ा !

भगवान्‌की लीला है। एक वृक्षमें दो फूल खिल रहे थे। इतनेमें ही न मालूम कहाँसे काल-कीटने आकर उसीकी जड़में वास कर लिया। हाय ! उसने इन्हें खिलने भी नहीं दिया; ये थोड़ी-सी शोभा फैलाकर, तनिक-सी ही सुगन्ध वितरणकर सूखकर गिर पड़े। अब रघुनाथ ! तुम्हारे खिलनेके दिन हैं, तुम खिलो। तुम भगवान्‌के भक्त हो—पद्मजातीय पुष्प हो; दुःख-दारिद्र्यके प्रचण्ड सूर्य-तापमें ही तुम्हें खिलना होगा; तुम प्रस्फुटित होओ। तुम्हारे इस छिन्न मलिन वस्त्रसे ही, शैवाल-समावृत पंकजकी भाँति तुम्हारी शोभा सौगुनी बढ़ जायगी,—तुम्हारे भक्ति-सौरभसे विश्व-ब्रह्माण्ड भर जायगा। तुम्हारे खिलनेके दिन आ गये हैं, खिलो रघुनाथ ! तुम खिलो !

रघुनाथ गाँव-गाँवमें भीख माँगकर जीवन-निर्वाह करने लगा। बड़े घरका लड़का है, दुःख किसको कहते हैं, इस बातसे भी वह अपरिचित था ! पर आज उसके कष्टकी कोई सीमा नहीं है। एक दिन घोर रात्रिके समय वृक्षके नीचे पड़े हुए रघुनाथने मनमें सोचा—

'यों बिना कारण गाँव-गाँव भटकनेमें क्या लाभ है ? पशुकी भाँति आहार-निद्राके सेवनमें ही कौन-सा फायदा है ? अच्छा हो, किसी पुण्यक्षेत्रमें जाकर भगवान्‌का नाम लेते हुए जीवन बिताया जाय ।' यह विचारकर रघुनाथ बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे नीलाचल (पुरी) चला गया । मन्दिरमें जाकर भगवान्‌का दर्शन करनेके बाद सरलतासे हाथ जोड़कर वह कहने लगा—

'हे प्रभो ! मेरे माता-पिता दोनों ही मर गये हैं—मुझे अनाथ बना गये हैं । इसीसे आज रघु 'अरक्षित' यानी रक्षकहीन हो रहा है । मन करता है कि तुम्हारे चरणोंका आश्रय पकड़ लूँ । पर मेरी इच्छासे ही क्या होगा, तुम्हारी इच्छा ही तो इच्छा है । अब तुम्हारी जो इच्छा हो, करो, पर यह जान रक्खो कि रघुनाथ तुम्हारा ही खरीदा हुआ गुलाम है ।' जहाँ सरल विश्वाससे कातर-हृदयकी सच्ची पुकार होती है, वहीं उत्तर मिलता है । रघुनाथने देखा, मानो प्रभु करकमल उठाकर उससे कह रहे हैं—'रघु ! तुझे कोई भय नहीं है ! तू यहाँ महाप्रसाद भोजन करता हुआ आनन्दसे विचरण कर, मैंने तुझे अपना सेवक बना लिया ।' प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य कर रघु वहीं रहने लगा । जहाँ मिले, वहीं महाप्रसाद पा लेना और प्रभुके मुखकमलका दर्शन करते रहना, यही रघुनाथका एकमात्र कार्य था । भगवत्-कृपासे रघुनाथका मन आनन्दसे इतना भर गया कि पहलेकी सारी बातें उसकी स्मृतिसे हट गयीं और तो क्या, पत्नी अन्नपूर्णाके सदा-प्रफुल्ल कोमल मुख-कमलकी भी याद उसके मनसे मिट गयी !

कुछ दिनोंमें यह समाचार रघुनाथके ससुराल पहुँचा । गरीब भिखारीको दामाद माननेसे इज्जतमें बहुत बट्टा लग जायगा । अतएव

गंगाधरने दस-बीस खोटी-खरी बककर पुत्रोंके सामने प्रस्ताव रक्खा कि 'अन्नपूर्णाका दूसरा विवाह कर देना चाहिये। समझ लेना चाहिये कि उसका विवाह अभी हुआ ही नहीं।' जैसे गुणवान् पिता थे, वैसे ही उनके स्त्री-पुत्र भी थे। सबने एक स्वरसे इस बातको पसंद किया। अधार्मिक कृपण गंगाधर और उनके पुत्रोंने वर खोजना शुरू किया और अन्तमें राजमन्त्रीके लड़के बसु महापात्रसे सम्बन्ध स्थिर हो गया। बसु बड़ा ही बदमाश और पापी था, इसीसे उसने विवाहिता अन्नपूर्णाको फिरसे ब्याहना स्वीकार कर लिया। गंगाधर और मन्त्रीपुत्र दोनों ही धनी तथा प्रभावशाली मनुष्य थे। इससे दूसरे किसीमें भी इनके इस अन्यायका विरोध करनेके लिये साहस नहीं हुआ। विवाहका दिन स्थिर हो गया फाल्गुन शुक्ला पञ्चमी !

अन्नपूर्णाने सब बातें सुनीं। वह अब निरी अबोध बालिका नहीं है। उसकी पंद्रह सालसे ज्यादा उम्र हो गयी है। माता-पिताका विचार जानकर उसका चित्त व्याकुल हो उठा, पर उपाय क्या है ? वह मन-ही-मन भगवान्‌को स्मरण करके कहने लगी—'हे भगवन् ! यह क्या हो रहा है ? हाय प्रभो ! यह तो असम्भव बात है, प्राणनाथके जीवित रहते ही दूसरेसे विवाहकी बातचीत कैसी ? प्रभो ! इस शरीरपर तो अब मेरा अधिकार नहीं है, मैं तो इसे उनके चरणोंमें समर्पण कर चुकी हूँ, फिर इस शरीरसे दूसरेका मुँह कैसे देखूँगी ? हे नाथ ! तुमने विपद्‌में पड़े हुए गजराजको उबार लिया था। तुम्हींने सती द्रौपदीकी लाज रक्खी थी। तुम सबके अन्तर्यामी हो, मैं तुम्हें क्या कहूँ ? मेरी कष्टकहानी तुमसे छिपी नहीं है। प्रभो ! मैं सती हूँ,

व्यभिचारिणी नहीं; मेरा इस विपद्-सागरसे उद्धार कीजिये, प्रभो ! उद्धार कीजिये ।'

अन्नपूर्णा दिन-रात अकेली बैठी भगवान्‌से प्रार्थना करती और आँसू बहाया करती थी । उसे खाना-पीना, हँसना-बोलना कुछ भी नहीं सुहाता था, वह रातों जागा करती थी । उसका किसीके पास जाने-आनेका मन नहीं करता । घरमें एक पुरानी दासी थी, उसीने अन्नपूर्णाको पाला था । अतएव अन्नपूर्णाने अपनी कष्टकहानी एक दिन उसे सुनायी और उससे कहा कि 'यहाँसे कोई नीलाचल जाता हो तो तलाश करना, एक पत्र तो स्वामीके पास भेज दूँ । मुझे आशा है, मेरा पत्र मिलनेपर वे आकर मुझे इस विपत्तिसे जरूर बचावेंगे ।'

दासीको एक दिन पता लगा कि दूसरे मुहल्लेके कुछ लोग श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करने नीलाचल जा रहे हैं, उसने तुरंत अन्नपूर्णाको खबर दी । अन्नपूर्णाने पत्र लिखा—

'हे प्राणनाथ ! मैं आपके श्रीचरणोंकी दासी हूँ, मेरी विपत्ति सुनिये—आगामी फाल्गुन शुक्ला पञ्चमीके दिन इस राज्यके मन्त्री-पुत्रके साथ मेरा विवाह होना स्थिर हुआ है । यदि दासीपर कृपा हो तो तनिक भी विलम्ब न कर तुरंत चले आइये । आना-न-आना अवश्य ही आपकी इच्छापर निर्भर है । परन्तु मैं तो दिन गिन रही हूँ । नियत समयतक आपकी बाट देखूँगी । यदि इस बीचमें आकर मुझे दर्शन नहीं देंगे तो मैं आत्महत्या करके प्राण त्याग दूँगी ।'

अन्नपूर्णाने दासीके हाथमें पत्र देकर उससे कहा—'धाय माँ ! यह पत्र देकर उनको मेरी ओरसे हाथ जोड़कर कह देना कि मेरे स्वामी पुरीमें रहते हैं, भीख माँगकर खाते हैं, वहाँ उनको लोग 'रघु

अरक्षित' कहा करते हैं। कह देना कि, अब मेरा जीवन आप लोगोंकी ही दयापर निर्भर है, यह पत्र आप मेरे स्वामीके पास पहुँचा देंगे तो मैं करोड़ों जन्मोंतक आपकी ऋणी रहूँगी।' दासीने ले जाकर पत्र उन लोगोंको दे दिया और सारी बातें नम्रतापूर्वक समझा दीं। वे भी अन्नपूर्णाके दुःखसे पूरी सहानुभूति रखते थे, इसलिये आदरसे पत्र लेकर भरोसा दिया और पुरीके लिये रवाना हो गये। माघके शेष होते-होते वे पुरी पहुँचे। कई दिनोंतक तो रघुका पता ही नहीं लगा। एक दिन अकस्मात् मन्दिरके सिंहद्वारपर रघुसे उनकी भेंट हो गयी, परिचय पाकर उन्होंने रघुको पत्र दे दिया। पत्र पढ़ते ही रघुका चित्त व्याकुल हो उठा, वह सोचने लगा, 'फाल्गुन शुक्ला ५ के केवल दस दिन शेष रहे हैं, पुरीसे कलावतीपुरका रास्ता एक महीनेका है, नहीं पहुँचता हूँ तो सती आत्महत्या करके प्राण त्याग देती है। पहुँचूँ तो कैसे पहुँचूँ ?' रघु कुछ भी स्थिर नहीं कर सका, अन्तमें भगवान्‌की शरणमें होकर वह कहने लगा—'प्रभो ! अब तुम्हारे सिवा मुझे इस विपत्तिसे कौन बचा सकता है ? हे चक्रपाणि ! हे मनोरथ-कल्पद्रुम ! हे कृपाके सागर ! हे विपत्तितमका नाश करनेवाले सूर्य ! आज सतीके मनः-सन्तापका नाश करनेके लिये कोई उपाय कीजिये। हे सर्वान्तर्यामिन् ! तुमसे कुछ भी छिपा नहीं है, तुम्हारे सिवा इस समय दूसरा कोई रक्षक नहीं है।' इस प्रकार व्याकुल और आर्त होकर रघुनाथने न मालूम भगवान्‌के सामने कितनी बातें कहीं। रात अधिक हो गयी थी, व्यथित-चित्तसे स्तुति करता हुआ सिंहद्वारके पास ही टाटके फटे चिथड़ेपर सो गया। शरणागतवत्सल भगवान्‌का चिन्तन करते-करते ही निद्रा-देवीने उसे घेर लिया। जो अपनेको निर्बल समझकर भगवान्‌को

आर्तभावसे पुकारता है, भगवान् उसकी तत्काल सुनते हैं। आज जगन्नाथ अपने भक्तकी व्यथासे व्यथित हो गये। उसी क्षण भगवान्की मायासे रघु उसी निद्रित अवस्थामें कलावतीपुर गंगाधर करणके दरवाजे-पर पहुँच गया!

आजकल लोग कहते हैं कि यह सब बातें निरी कल्पना हैं। इस प्रकारकी अप्राकृत घटनाएँ कभी नहीं हो सकतीं, अतएव ये सब अविश्वसनीय हैं। परन्तु वे भूलते हैं। भगवान् और उनके सच्चे भक्तोंकी बातें तो अलौकिक होनी ही चाहिये। क्योंकि भगवान् प्रकृतिसे अतीत हैं, जैसे उनका निराकारसे साकाररूप धारण करना अलौकिक है, ऐसे ही उनके कर्म भी अलौकिक हैं—अर्जुनसे स्वयं भगवान्ने कहा भी है कि '*जन्म कर्म च मे दिव्यम्।*' जो सच्चे भक्त होते हैं, वे भी भगवान्की शक्तिको पाकर अलौकिक कर्मी हो जाते हैं। अतएव भगवान् और उनके सच्चे भक्तोंके अप्राकृत दीखनेवाले कर्मोंमें किसी भी श्रद्धालुको कभी सन्देह नहीं करना चाहिये! अस्तु!

सूर्योदय होते ही रघुकी आँखें खुलीं। देखते ही वह चौकन्ना-सा हो गया और मन-ही-मन कहने लगा—'मैं कहाँ आ गया? सिंहद्वार तो नहीं है? यहाँ तो पुरीकी कोई भी बात नजर नहीं आती। स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ? यह कौन-सा शहर है? सामने ही यह सुन्दर महल किसका है? यहाँ तो कोई जान-पहचानका आदमी भी नहीं दीखता?'

विवाहके बाद रघुनाथ कभी यहाँ नहीं आया था, इससे वह यह नहीं पहचान सका कि यही मेरी ससुराल है। कुछ दिन चढ़नेपर आने-जानेवाले लोगोंसे उसने पूछा, 'भाई! यह कौन-सा शहर है?

यह बड़ी भारी इमारत किस सेठकी है ?' लोगोंने कहा—'इस शहरका नाम कलावतीपुर है और यह महल श्रीमान् गंगाधर करणका है ।' नाम सुनते ही रघुके आश्चर्यका कोई पार न रहा, वह उसी क्षण भगवत्-प्रेममें डूब गया, उसके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी अखण्ड धारा बहने लगी । उसने मन-ही-मन कहा—'धन्य प्रभो ! तुम्हारे बिना यह खेल दूसरा कौन कर सकता है ? मेरी दारुण मर्म-वेदनाको जानकर तुमने ही यह अपार दया की है । तुम्हारे लिये क्या बड़ी बात है ? सारा ब्रह्माण्ड जिसके संकल्पमात्रसे बनता-बिगड़ता है, उसके लिये यह कितनी-सी बात है ?'

रघुनाथ तन-मनकी सुधि भूलकर भगवान्‌के प्रति न माळ्म क्या-क्या कह रहा था, इतनेहीमें उसके कई साले मकानसे बाहर निकले । उन्होंने दूरसे ही रघुनाथको पहचान तुरंत घरमें जाकर कहा । रघुनाथका अकस्मात् आना सुनकर सभी हड़बड़ा गये । बाहर आकर देखा तो माळ्म हुआ कि फटा चिथड़ा पहने रघु ही है । सब घरवालोंके मुँह सूख गये, उन्होंने मन-ही-मन कहा—यह नयी आफत कहाँसे आ गयी ! पर अन्नपूर्णाको बड़ी प्रसन्नता हुई, वह मन-ही-मन भगवान्‌को हजारों धन्यवाद देने लगी । जो कुछ भी हो, लोकलाजसे गंगाधर अपने दामादको अंदर ले गया । स्नान कराकर अच्छे कपड़े पहनाये । भोजन तैयार हुआ । भगवान्‌को निवेदन करके रघुनाथने भोजन किया । *'विषरस भरा कनक घट जैसे'* की उक्तिके अनुसार रघुनाथके ससुर, सास और साले द्वेषके जहरको अंदर छिपाकर मीठी-मीठी बातें करने लगे । रघुनाथके आदर-सत्कारमें ऊपरसे किसी तरहकी कमी नहीं की गयी ।

भोजनके बाद विश्रामके लिये कहकर घरके सब लोग अलग चले गये । रघुनाथ कोमल दुग्धफेन-सी शय्यापर लेट गया ! पतिव्रता अन्नपूर्णा लज्जासे सिर नीचा किये धीरे-धीरे आकर स्वामीके चरणोंमें बैठ गयी और अपने कोमल हाथोंसे पैर दबाने लगी । न मालूम कितनी बातें उसके मनमें आयीं, क्या-क्या कहनेका दिल हुआ, परन्तु जबानसे एक शब्द भी नहीं निकल सका, मनकी मनमें ही रह गयी । ठीक यही दशा रघुनाथकी थी, वह भी अन्नपूर्णाको कुछ भी नहीं कह सका । तो क्या दोनोंमें एक भी बात नहीं हुई ? हुई क्यों नहीं, पर हुई सजल नेत्रोंकी कल-कल भाषामें ! दोनोंके पलकहीन नेत्रोंसे प्रेमकी सरिता बह चली,—दोनोंके ही तापित प्राण शीतल हो गये !

इधर जहाँ नीरवताके अव्यक्त सुरोंमें अश्रुरेखाके कोमल तार दम्पतिके मिलन-संगीतकी मधुर तान आलाप रहे थे, वहाँ उधर पिशाच-हृदय गंगाधर-परिवार नौ जिह्वारूपी यन्त्रोंको एक सूत्रमें बाँधकर दम्पतिके नित्य विच्छेदके लिये वज्ररागका भीषण गान गा रहा था । एक गुप्त कोठरीके कोनेमें गंगाधर, उसकी स्त्री और सातों पुत्रोंने मिलकर निश्चय किया कि 'आज ही रातको जहर देकर रघुनाथका काम तमाम कर देना पड़ेगा । अन्नपूर्णाके लिये तो कोई चिन्ता ही नहीं है । रघुनाथके मर जानेपर वह तो अनाथिनी होगी नहीं । मन्त्रीपुत्रसे विवाह होनेपर उसके सुखका तो कोई पार नहीं रहेगा !' मूर्खो ! तुम्हें पवित्र सती-हृदयके सुख-दुःखका अनुमान कैसे हो सकता है ? अस्तु ।

जैसी सलाह, वैसा ही काम ! षड्यन्त्रकारियोंने चुपचाप जहर मँगवा लिया । यह निश्चय हुआ कि भोजनमें विष मिला दिया जायगा । सन्ध्या हुई, रसोई बनने लगी, पापमूर्ति गंगाधरकी पत्नीने सारी चीजोंमें

चुपकेसे विष मिला दिया। माता-पिता और भाइयोंकी दिनभरकी फुस-फुसाहटने अन्नपूर्णाके मनमें सन्देह पैदा कर दिया। वह रसोईमें मदद करनेके बहानेसे रसोई-घरमें चली गयी। दुष्टा माताने कहा—'बेटी! क्या आज भी तेरे बिना रसोई नहीं बनेगी, बहुत दिनों बाद घरमें जवाँई आये हैं। जाओ, उनकी सेवा करो।' माताके बारम्बार कहनेपर भी अन्नपूर्णा 'हाँ अभी जाती हूँ' कहते-कहते पता लगानेके लिये वहाँ रह ही गयी। कुछ ही देरमें सारा मामला उसकी समझमें आ गया। माता-पिताके इस नारकी विचारसे उसका हृदय काँप उठा। उसने निश्चय कर लिया कि अभी स्वामीके पास जाकर उन्हें सावधान कर देना चाहिये। वह दौड़ी गयी, पर रघुनाथको सैर करानेके बहानेसे गंगाधरके लड़के बाहर ले गये थे। पतिको न पाकर अन्नपूर्णाके मनस्तापका पार नहीं रहा। उसे बड़ी चिन्ता हुई, कैसे स्वामीकी जीवन-रक्षा हो?

भगवान्‌ने बुद्धि दी, अन्नपूर्णाने जरा-से ताड़पत्रके टुकड़ेपर लिखा, *'भोजनमें विष भरा हलाहल भूलचूक मुख कौर न लीजै।'* और उसे लेकर तुरंत रसोई-घरमें गयी। माताने कहा—'अन्ना! तनिक यहाँ खड़ी रहो, मैं भोजनका सामान बगलके कमरेमें रख आती हूँ, क्योंकि जवाँईको जिमानेका प्रबन्ध वहीं किया गया है।' अन्नपूर्णा तो यही चाहती थी, भगवान्‌की कृपासे उसे बड़ा अच्छा अवसर मिल गया। उसने जल्दीसे चुपचाप एक पिष्ठक (बंगालकी एक मिठाई) में ताड़-पत्रका टुकड़ा रख दिया, अन्नपूर्णाने पहले ससुरालमें देखा था कि स्वामीको पिष्ठकका शौक है, इससे वह पहले सम्भवतः पिष्ठक ही खायँगे।

सोनेके थालमें भोजन परोसकर पापिनीने जवाँईको भोजनके लिये

बुला भेजा । मनमें मारनेकी पूर्ण कामना रहनेपर भी ऊपरसे आदर-सत्कारमें कोई त्रुटि नहीं थी। रघुनाथको इस षड्यन्त्रका ज़रा भी पता नहीं था, वह हाथ-पैर धोकर आसनपर बैठ गया और उसने प्रसन्न-मनसे समस्त पदार्थ भगवान् श्रीजगन्नाथके प्रति निवेदन किये, तदनन्तर आचमन किया । अन्नपूर्णा छिपकर दूरसे देख रही थी, उसके हृदयका कम्प इतना बढ़ गया था कि उसके लिये खड़े रहना कठिन था, परन्तु कर्तव्यबोधसे वह वहाँ किसी तरह खड़ी रही, आँखोंके सामने अँधेरा छा रहा था । मनमें सोचती थी कि कहीं पिष्ठकके बदले दूसरी चीज उठा ली तो अनर्थ हो जायगा । फिर सोचा कि जो कुछ भी हो, यह लज्जा और भय कैसा ? होगा सो देखा जायगा, पुकारकर पतिको सावधान कर दूँ कि 'सब चीजोंमें जहर भरा है, आप बिल्कुल न खायँ ।' भगवान्की लीला विचित्र है, अन्नपूर्णाको अधिक चिन्ता नहीं करनी पड़ी, रघुनाथने आचमन करके सबसे पहले उसी पिष्ठकको उठाया । पिष्ठक तोड़ते ही ताड़का पत्ता हाथमें आ गया । जरा-से पत्तेपर बिना सन्देह किसकी दृष्टि जाती ? उसे देखा रघुनाथने और अन्नपूर्णाने । रघुनाथने पढ़कर तत्काल सारा षड्यन्त्र समझ लिया । भोजन शुरू हुआ समझकर माताने चालाकीसे अन्नपूर्णाको वहाँसे हटा दिया । उसने कहा—'बेटी अन्ना ! तू धाय माँके पास चलकर बैठ, मैं अभी बुला लूँगी ।' मनमें भय था कि इसके रहनेसे कहीं कोई बखेड़ा न हो जाय । अन्नपूर्णाने भी जानेमें कोई आपत्ति नहीं की, क्योंकि उसका विश्वास था कि जब स्वामीने मेरा पर्चा पढ़ लिया है तब वह विषभरा भोजन कभी नहीं करेंगे ।

रघुनाथ बड़े चक्करमें पड़ गया, उसके हाथका पिष्ठक हाथमें ही

रह गया । वह सोचने लगा—'हाय ! मैंने क्या किया, प्रभुके जहरका भोग लगा दिया ! प्रभो ! मेरे अज्ञानकृत अपराधको क्षमा करो । नाथ ! अब मुझे बुद्धि प्रदान करो, मैं क्या करूँ ? मैं इस समय कुछ भी नहीं सोच सकता, भगवान्के पवित्र प्रसादका त्याग कैसे करूँ ? जिसका जन्म हुआ है, उसकी एक दिन मृत्यु निश्चित है । आज प्रसादका परित्यागकर क्या मैं अमर हो जाऊँगा ? जब मरना ही है तब आज ही प्रसाद ग्रहण करके मरनेमें क्या आपत्ति है ? नहीं, नहीं नाथ ! मैं तुम्हारे प्रसादका अनादर नहीं कर सकता । प्राण जायँ या रहें, मुझे प्राणोंकी कोई परवा नहीं है ।'

सरल भक्तके पवित्र विचार भगवान्ने तुरंत जान लिये । इससे पहले वे कई बार विषको अमृत कर चुके हैं । प्रह्लादके लिये विष अमृत हो गया था । एक दिन मीराका विष भी अमृत बना था । आज भी उचित व्यवस्था करनी पड़ेगी । धन्य लीलामय !

रघुनाथने समझ-बूझकर भी अविचलित चित्तसे विषमिश्रित अन्न भगवान् गोविन्दका नाम स्मरण करते-करते खा लिया । थालीमें एक कण भी नहीं छोड़ा । हलाहल जहर था, तुरंत असर हुआ, रघुनाथ बेहोश होकर वहीं गिर पड़ा और थोड़ी देर छटपटानेपर उसके प्राण-पखेरू वहीं उड़ गये । आज पिशाचिनी गंगाधरकी स्त्रीको अपनी सफलता-पर बड़ा ही आनन्द है । वह दौड़ी जाकर अपने पति-पुत्रोंको वहाँ बुला लायी, सभी आनन्दमें सराबोर हो रहे हैं । सबने सोच-विचार-कर यह निश्चय किया कि सबेरा होते ही लाशको मिट्टीमें गाड़ देंगे । कह दिया जायगा कि रातको अचानक साँप काट गया । यों विचार-कर कमरेका दरवाजा बंदकर सब चले गये ।

भोजनके बाद विश्रामके लिये कहकर घरके सब लोग अलग चले गये। रघुनाथ कोमल दुग्धफेन-सी शय्यापर लेट गया! पतिव्रता अन्नपूर्णा लज्जासे सिर नीचा किये धीरे-धीरे आकर स्वामीके चरणोंमें बैठ गयी और अपने कोमल हाथोंसे पैर दबाने लगी। न मालूम कितनी बातें उसके मनमें आयीं, क्या-क्या कहनेका दिल हुआ, परन्तु जबानसे एक शब्द भी नहीं निकल सका, मनकी मनमें ही रह गयी। ठीक यही दशा रघुनाथकी थी, वह भी अन्नपूर्णाको कुछ भी नहीं कह सका। तो क्या दोनोंमें एक भी बात नहीं हुई? हुई क्यों नहीं, पर हुई सजल नेत्रोंकी कल-कल भाषामें! दोनोंके पलकहीन नेत्रोंसे प्रेमकी सरिता बह चली,—दोनोंके ही तापित प्राण शीतल हो गये!

इधर जहाँ नीरवताके अव्यक्त सुरोंमें अश्रुरेखाके कोमल तार दम्पतिके मिलन-संगीतकी मधुर तान आलाप रहे थे, वहाँ उधर पिशाच-हृदय गंगाधर-परिवार नौ जिह्वारूपी यन्त्रोंको एक सूत्रमें बाँधकर दम्पतिके नित्य विच्छेदके लिये वज्ररागका भीषण गान गा रहा था। एक गुप्त कोठरीके कोनेमें गंगाधर, उसकी स्त्री और सातों पुत्रोंने मिलकर निश्चय किया कि 'आज ही रातको जहर देकर रघुनाथका काम तमाम कर देना पड़ेगा। अन्नपूर्णाके लिये तो कोई चिन्ता ही नहीं है। रघुनाथके मर जानेपर वह तो अनाथिनी होगी नहीं। मन्त्रीपुत्रसे विवाह होनेपर उसके सुखका तो कोई पार नहीं रहेगा!' मूर्खो! तुम्हें पवित्र सतीहृदयके सुख-दुःखका अनुमान कैसे हो सकता है? अस्तु।

जैसी सलाह, वैसा ही काम! षड्यन्त्रकारियोंने चुपचाप जहर मँगवा लिया। यह निश्चय हुआ कि भोजनमें विष मिला दिया जायगा। सन्ध्या हुई, रसोई बनने लगी, पापमूर्ति गंगाधरकी पत्नीने सारी चीजोंमें

चुपकेसे विष मिला दिया। माता-पिता और भाइयोंकी दिनभरकी फुस-फुसाहटने अन्नपूर्णाके मनमें सन्देह पैदा कर दिया। वह रसोईमें मदद करनेके बहानेसे रसोई-घरमें चली गयी। दुष्टा माताने कहा—'बेटी! क्या आज भी तेरे बिना रसोई नहीं बनेगी, बहुत दिनों बाद घरमें जवाँई आये हैं। जाओ, उनकी सेवा करो।' माताके बारम्बार कहनेपर भी अन्नपूर्णा 'हाँ अभी जाती हूँ' कहते-कहते पता लगानेके लिये वहाँ रह ही गयी। कुछ ही देरमें सारा मामला उसकी समझमें आ गया। माता-पिताके इस नारकी विचारसे उसका हृदय काँप उठा। उसने निश्चय कर लिया कि अभी स्वामीके पास जाकर उन्हें सावधान कर देना चाहिये। वह दौड़ी गयी, पर रघुनाथको सैर करानेके बहानेसे गंगाधरके लड़के बाहर ले गये थे। पतिको न पाकर अन्नपूर्णाके मनस्तापका पार नहीं रहा। उसे बड़ी चिन्ता हुई, कैसे स्वामीकी जीवन-रक्षा हो?

भगवान्‌ने बुद्धि दी, अन्नपूर्णाने जरा-से ताड़पत्रके टुकड़ेपर लिखा, '*भोजनमें विष भरा हलाहल भूलचूक मुख कौर न लीजै।*' और उसे लेकर तुरंत रसोई-घरमें गयी। माताने कहा—'अन्ना! तनिक यहाँ खड़ी रहो, मैं भोजनका सामान बगलके कमरेमें रख आती हूँ, क्योंकि जवाँईको जिमानेका प्रबन्ध वहीं किया गया है।' अन्नपूर्णा तो यही चाहती थी, भगवान्‌की कृपासे उसे बड़ा अच्छा अवसर मिल गया। उसने जल्दीसे चुपचाप एक पिष्ठक (बंगालकी एक मिठाई) में ताड़-पत्रका टुकड़ा रख दिया, अन्नपूर्णाने पहले ससुरालमें देखा था कि स्वामीको पिष्ठकका शौक है, इससे वह पहले सम्भवतः पिष्ठक ही खायँगे।

सोनेके थालमें भोजन परोसकर पापिनीने जवाँईको भोजनके लिये

बुला भेजा। मनमें मारनेकी पूर्ण कामना रहनेपर भी ऊपरसे आदर-सत्कारमें कोई त्रुटि नहीं थी। रघुनाथको इस षड्यन्त्रका ज़रा भी पता नहीं था, वह हाथ-पैर धोकर आसनपर बैठ गया और उसने प्रसन्न-मनसे समस्त पदार्थ भगवान् श्रीजगन्नाथके प्रति निवेदन किये, तदनन्तर आचमन किया। अन्नपूर्णा छिपकर दूरसे देख रही थी, उसके हृदयका कम्प इतना बढ़ गया था कि उसके लिये खड़े रहना कठिन था, परन्तु कर्तव्यबोधसे वह वहाँ किसी तरह खड़ी रही, आँखोंके सामने अँधेरा छा रहा था। मनमें सोचती थी कि कहीं पिष्ठकके बदले दूसरी चीज उठा ली तो अनर्थ हो जायगा। फिर सोचा कि जो कुछ भी हो, यह लज्जा और भय कैसा? होगा सो देखा जायगा, पुकारकर पतिको सावधान कर दूँ कि 'सब चीजोंमें जहर भरा है, आप बिल्कुल न खायँ।' भगवान्‌की लीला विचित्र है, अन्नपूर्णाको अधिक चिन्ता नहीं करनी पड़ी, रघुनाथने आचमन करके सबसे पहले उसी पिष्ठकको उठाया। पिष्ठक तोड़ते ही ताड़का पत्ता हाथमें आ गया। जरा-से पत्तेपर बिना सन्देह किसकी दृष्टि जाती? उसे देखा रघुनाथने और अन्नपूर्णाने। रघुनाथने पढ़कर तत्काल सारा षड्यन्त्र समझ लिया। भोजन शुरू हुआ समझकर माताने चालाकीसे अन्नपूर्णाको वहाँसे हटा दिया। उसने कहा—'बेटी अन्ना! तू धाय माँके पास चलकर बैठ, मैं अभी बुला लूँगी।' मनमें भय था कि इसके रहनेसे कहीं कोई बखेड़ा न हो जाय। अन्नपूर्णाने भी जानेमें कोई आपत्ति नहीं की, क्योंकि उसका विश्वास था कि जब स्वामीने मेरा पर्चा पढ़ लिया है तब वह विषभरा भोजन कभी नहीं करेंगे।

रघुनाथ बड़े चक्करमें पड़ गया, उसके हाथका पिष्ठक हाथमें ही

रह गया। वह सोचने लगा—'हाय! मैंने क्या किया, प्रभुके जहरका भोग लगा दिया! प्रभो! मेरे अज्ञानकृत अपराधको क्षमा करो। नाथ! अब मुझे बुद्धि प्रदान करो, मैं क्या करूँ? मैं इस समय कुछ भी नहीं सोच सकता, भगवान्‌के पवित्र प्रसादका त्याग कैसे करूँ? जिसका जन्म हुआ है, उसकी एक दिन मृत्यु निश्चित है। आज प्रसादका परित्यागकर क्या मैं अमर हो जाऊँगा? जब मरना ही है तब आज ही प्रसाद ग्रहण करके मरनेमें क्या आपत्ति है? नहीं, नहीं नाथ! मैं तुम्हारे प्रसादका अनादर नहीं कर सकता। प्राण जायँ या रहें, मुझे प्राणोंकी कोई परवा नहीं है।'

सरल भक्तके पवित्र विचार भगवान्‌ने तुरंत जान लिये। इससे पहले वे कई बार विषको अमृत कर चुके हैं। प्रह्लादके लिये विष अमृत हो गया था। एक दिन मीराका विष भी अमृत बना था। आज भी उचित व्यवस्था करनी पड़ेगी। धन्य लीलामय!

रघुनाथने समझ-बूझकर भी अविचलित चित्तसे विषमिश्रित अन्न भगवान् गोविन्दका नाम स्मरण करते-करते खा लिया। थालीमें एक कण भी नहीं छोड़ा। हलाहल जहर था, तुरंत असर हुआ, रघुनाथ बेहोश होकर वहीं गिर पड़ा और थोड़ी देर छटपटानेपर उसके प्राण-पखेरू वहीं उड़ गये। आज पिशाचिनी गंगाधरकी स्त्रीको अपनी सफलता-पर बड़ा ही आनन्द है। वह दौड़ी जाकर अपने पति-पुत्रोंको वहाँ बुला लायी, सभी आनन्दमें सराबोर हो रहे हैं। सबने सोच-विचार-कर यह निश्चय किया कि सबेरा होते ही लाशको मिट्टीमें गाड़ देंगे। कह दिया जायगा कि रातको अचानक साँप काट गया। यों विचार-कर कमरेका दरवाजा बंदकर सब चले गये।

अन्नपूर्णा माताकी बात मानकर इधर चली आयी थी, परन्तु उसके मनमें शान्ति नहीं है, अनर्थकी आशङ्कासे प्राण छटपटा रहे हैं। स्वामीकी थालीमें विषमिश्रित अन्न देखकर किस पतिव्रताके प्राणोंमें शान्ति रह सकती है? वह अपने सोनेके कमरेके आसपास व्याकुल हुई घूम रही थी, माता-पिता और भाइयोंके आने-जानेसे और उनकी कानाफूँसीसे अन्नपूर्णाके मनमें घोर सन्देह छा गया। सबके चले जानेपर वह बाहर निकलकर धीरे-धीरे उस कमरेकी ओर चली, जिसमें रघुनाथ भोजन करने बैठे थे। जाकर देखा, कमरेका दरवाजा बंद है। भीतर दीपक जल रहा है। उसने उसी उजियालेके सहारे खिड़कीसे अंदरकी ओर ताककर जो कुछ देखा, उससे उसके प्राण सूख गये। हा! जीवन-धन भोजनके आसनपर ही जीवनशून्य पड़े हैं। सतीका शरीर थर-थर काँपने लगा, वह खड़ी नहीं रह सकी; वहीं मूर्छित होकर गिर पड़ी। मूर्छा छूटनेपर देखा, सब तरफ अन्धकार छा रहा है। कमरेके अंदरका दीपक भी बुझ गया है। चारों ओर सन्नाटा है। सती अब क्या करती? उसने सोचा—'निर्बलके बल राम हैं।' जब सब सहारा छूट जाता है तब उस अखण्ड और निश्चित सहारेकी ओर पीड़ित मनुष्यका मन जाता है और यदि वह हृदयकी गहराईसे अनन्यभावसे उसे पुकार सकता है, तो सुनवायी भी बहुत ही जल्दी होती है। भेरीका शब्द चार कोसतक जाता है, वज्रकी भीषण ध्वनि अड़तालीस कोसतक पहुँचती है परन्तु भक्तके अन्तस्तलका शब्द तत्काल ही सारे विश्वमें व्याप्त हो जाता है और अखिल विश्वव्योमको भेदकर वह उसी क्षण भगवान्‌के परमधाममें जा पहुँचता है। हरिपरायणा अनन्यशरणागता अन्नपूर्णाके मनोव्यथाकी मूक पुकार देखते-ही-देखते भगवान्‌के कानोंमें जा पहुँची।
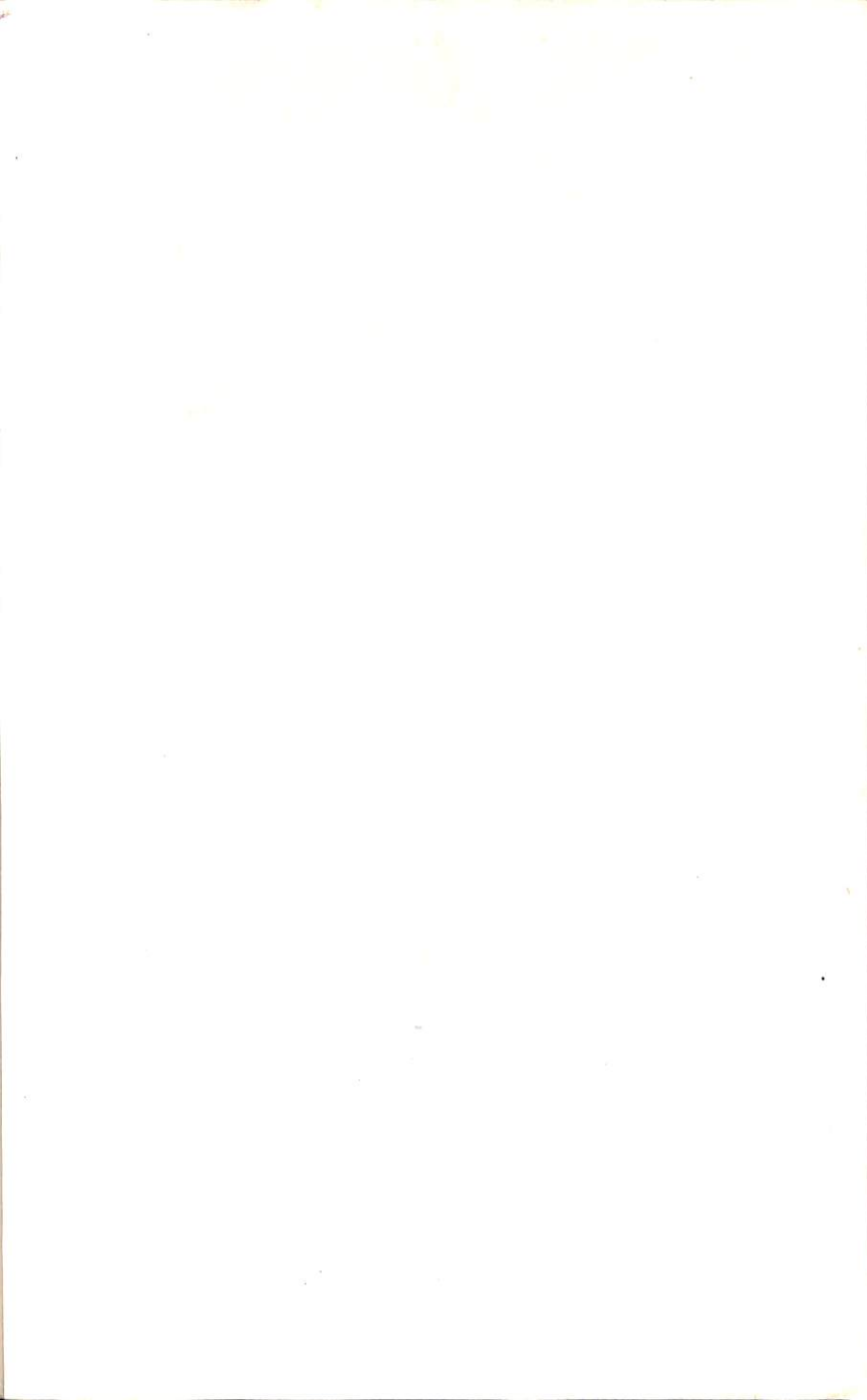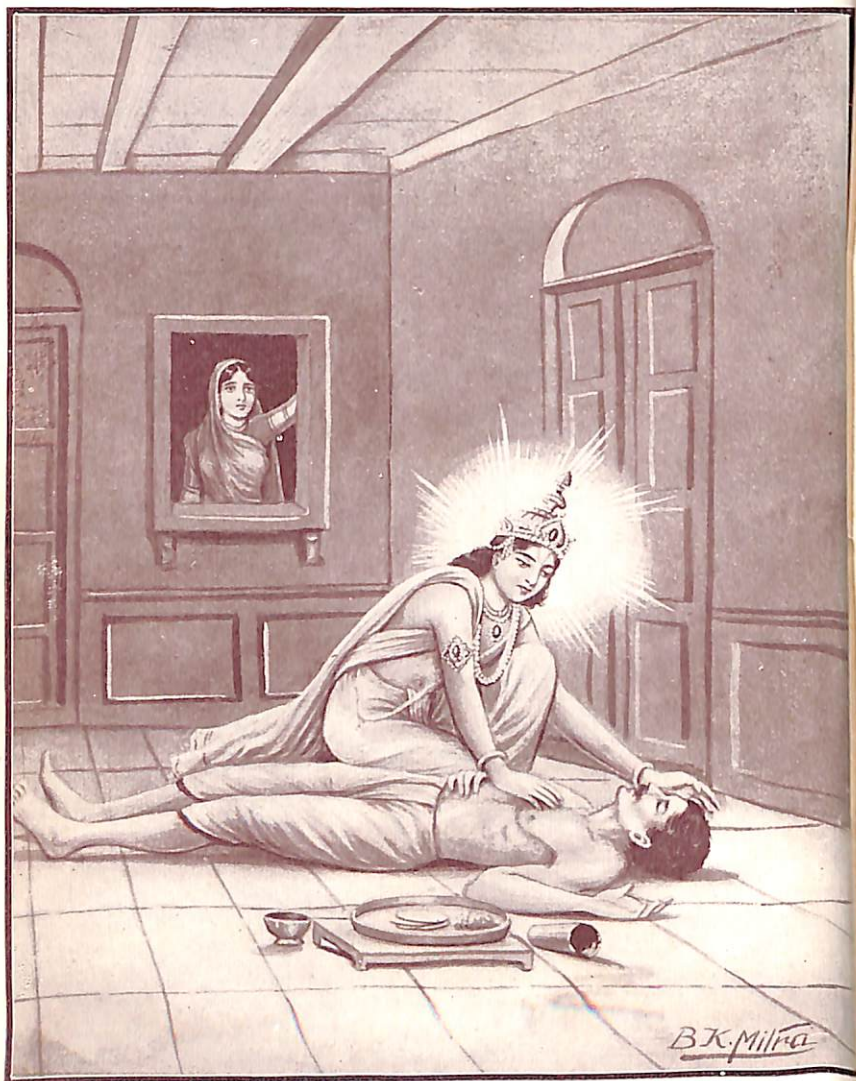
भक्त रघुनाथको प्राण-दान

भक्तकी विपत्तिके करुण-कातर स्वरसे प्रभुका दिव्य सिंहासन हिल गया। भक्तकी मनोव्यथाने व्यथाहारी हरिके हृदयमें जाकर दारुण आघात किया। भक्त रघुनाथकी विषम विपत्ति देखकर भक्त-दुःखभञ्जन भगवान् स्थिर नहीं रह सके, वे वायुवेगसे भी तीव्रगति होकर तुरंत कलावती पहुँचे। बाहर अन्धकारमें व्याकुल खड़ी हुई अन्नपूर्णाको अकस्मात् कमरेमें कुछ आहट सुनायी दी, उसने घबड़ाकर अंदरकी ओर ताका, उसने देखा, स्निग्ध उज्ज्वल ज्योतिसे घर जगमगा रहा है। घनश्याम अन्धकारको भेदकर घनश्याम-मणिका प्रकाश छा गया है। अहा! प्राणमय हरि प्राणपतिके मस्तकपर एक हाथ रक्खे हुए स्नेहमयी जननीकी भाँति दूसरे हाथको उनके सारे अंगोंपर फिरा रहे हैं। इतनेमें अभूतपूर्व मधुर वाणी सुनायी दी। हरि बोले—'मेरे लाल! प्यारे रघुनाथ! उठ खड़ा हो, अचेत क्यों पड़ा है? देख बेटा! मैं आ गया हूँ। अरे, तुच्छ जहर तेरा क्या कर सकता है?'

जगज्जीवनके सञ्जीवन-मन्त्रसे मृत रघुनाथको पुनर्जीवन प्राप्त हो गया! रघुनाथ नींदसे जागे हुएकी भाँति उठ बैठा। अन्नपूर्णाके हृदय-पर इस आनन्द-दृश्यका इतना प्रभाव पड़ा कि वह अपनेको सँभाल नहीं सकी। उसके हृदयका अन्धकार सदाके लिये दूर हो गया। वह आनन्दकी अत्यन्त अधिकतासे मूर्छित होकर गिर पड़ी। रघुनाथके उठकर बैठते ही प्रकाश अन्तर्धान हो गया। गाढ़ी नींदसे जागनेपर मनुष्य जैसे सोचता है—'आज खूब सुखसे सोया, कुछ भी पता नहीं रहा' ऐसी ही दशा रघुनाथकी है। उसने सोचा बड़े सुखसे सो रहा था, मुझे किसने जगा दिया? चारों ओर देखा तो सिवा घने अन्धकार-के और कुछ भी दिखायी नहीं दिया। भगवत्प्रेरणासे पूर्व-स्मृति जाग उठी, सारी घटनाएँ आँखोंके सामने नाचने लगीं। 'मैं वही रघुनाथ हूँ?

मैं तो जहर खाकर मर रहा था, उस समय कैसी भयानक वेदना थी, कैसी प्रचण्ड जलन थी ? मैं तो उससे मूर्छित हो गया था। मेरी उस ज्वालाको किसने शान्त कर दिया ? किसने मेरे प्राणहीन शरीरमें पुनः प्राणोंका सञ्चार किया ? समझा, प्राणनाथ ! यह तुम्हारा ही काम है, तुम्हारे सिवा हे करुणामय ! दासपर ऐसी करुणा कौन करता है ? मेरे प्रभो ! तुम्हारा खेल तुम्हीं समझते हो; गोदसे नीचे पटक देनेवाले भी तुम्हीं हो, फिर बड़े प्यारसे हृदयसे लगाकर मुख चूमनेवाले भी तुम्हीं हो। तुम्हारे इस लीला-रहस्यको मुझ-जैसा अज्ञानी जीव क्या समझेगा प्रभो ! समझनेकी ज़रूरत भी क्या है ? दो, दो, मेरे नाथ ! व्यथा दो, विपत्तिका पहाड़ ढहा दो, नित नयी-नयी विपत्तियाँ डालो, खूब डालो, मैं सिर-माथेपर लेता हूँ, प्रत्येक विपत्तिके पीछे तुम्हारी प्रेम-ममतामयी हृदयकी ज्वालाको शान्त करनेवाली मोहन-मूरति तो दिखायी देगी ! बस और क्या चाहिये ? यही तो मेरे लिये परम लाभ है, परम शान्ति है। दो, दो, नाथ ! बारम्बार मुझे विपत्तिका दान दो।'

भक्त रघुनाथने व्यथाहारी हरिके प्रति ऐसी न मालूम कितनी बातें कहीं, वह कितना ही हँसा, कितना ही रोया और कितनी ही देर प्रेम-प्रलाप करता रहा, अन्तमें गद्गद-स्वरसे 'राम-कृष्ण-हरि' प्रभृति नाम-कीर्तन करने लगा। हरि-नामके नशेमें रघुनाथ शरीरकी सुधि भूल गया, वह सर्वथा बाह्य ज्ञानहीन हो गया। देखते-देखते रात भी बीत चली। पापमग्न करण-परिवारको सारी रात नींद नहीं आयी, सभीने करवटें बदलते रात बितायी। रघुनाथके विषकी ज्वालाकी अपेक्षा इन पापियोंके हृदयकी ज्वाला कहीं अधिक थी। जिसको दुःख दिया जाता है, उसकी अपेक्षा उनको दुःख बहुत अधिक होता है जो दूसरे-

को दुःख देते हैं या देना चाहते हैं। रघुनाथ जहरके कारण बेहोश हो गया था, उसे अधिक कालतक जहरकी ज्वालासे नहीं जलना पड़ा, परन्तु गंगाधर, उसकी स्त्री और सातों लड़के रातभर काल्पनिक चिन्ता-की चितामें दग्ध होते रहे। 'यह पाप प्रकट हो गया' 'किसीने जाकर राजदरबारमें खबर दे दी' 'ये सिपाही आये हमलोगोंको पकड़नेके लिये; और पकड़ ले गये' आदि हजारों चिन्ताओंने एक ही रातमें उनके हृदयको जर्जरित कर डाला। वे कभी उठकर बैठते, कभी आँगनमें आते, जरा-सा शब्द सुनते ही काँप उठते, खिड़कीसे बार-बार बाहरकी ओर झाँकते, परन्तु रात कटना उनके लिये कठिन हो गया था। पापियोंके लिये काली रात भी मानो बढ़ जाती है। अब कुछ उजियाला देखकर वे बिछौना त्यागकर बाहर आये। मुर्देको जल्दी-जल्दी ले जाकर मिट्टीमें गाड़ देनेके अभिप्रायसे सब-के-सब रसोई-घरके पास पहुँचे। गंगाधरने आगे बढ़कर दरवाजा खोला। सबेरा हो गया था, सूर्यकी किरणोंसे घरमें उजियाला छाया हुआ था, उस स्पष्ट प्रकाशमें उन लोगोंने जो कुछ देखा, उसपर एक बार तो उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ। उन्होंने देखा——'रघुनाथ भोजनके आसनपर स्थिर धीर-भावसे बैठा है, उसका शरीर पुलकित हो रहा है, मुखपर दिव्य-ज्योति छिटक रही है, निश्चल नेत्रोंसे जलकी धारा बह रही है, होठ काँप रहे हैं, कुछ देर-देरसे उसके मुखसे अस्पष्टरूपमें 'राम-कृष्ण-हरि' का उच्चारण हो रहा है। शरीरकी कान्ति ऐसी विलक्षण हो रही है मानो वह किसी दूसरे दिव्य-लोकका अमर देवता है!' सब-के-सब आश्चर्य-सागरमें डूब गये। काटो तो खून न निकले, ऐसी दशा हो गयी। एक दूसरेके मुँहकी ओर ताक रहा है, कोई कुछ भी बोल नहीं सकता। सभी घरके अंदर

गये। रघुनाथ उसी तरह अटल, अचल बैठा है। पैरोंकी आहट पाकर प्रेममग्न रघुनाथ दोनों हाथ पसारकर पुकारने लगा—'आओ, आओ मेरे प्रभो!' इतना कहकर हड़बड़ाया-सा होकर खड़ा हो गया। आँखें खोलकर उन्हें देख मन-ही-मन कहता है—'अरे! प्रभु तो नहीं हैं; हरि-हरि यहाँ तो मुझे मारनेवाले ससुर, सास और सालोंका दल खड़ा है!'

मतवालेकी तरह झूमता हुआ रघुनाथ फिर उसी आसनपर बैठ गया। अब गंगाधर प्रभृतिका माथा ठनका, उन्होंने सोचा 'यह मामूली आदमी नहीं है, ऐसा जहर खाकर भी कहीं मनुष्य बच सकता है? यह कोई देवता तो नहीं है?' भय और आश्चर्यमें डूबकर सबने रघुनाथके चरण पकड़ लिये और वे उससे क्षमा-प्रार्थना करने लगे।

रघुनाथने प्रसन्नमुखसे हँसते हुए कहा—'इसमें आपका कोई दोष नहीं है, सब अपना-अपना कर्मफल भोगते हैं। सम्भवतः मैंने पूर्व-जन्ममें किसीको जहर दिया था, इसीसे इस जन्ममें मुझे जहर खाना पड़ा है, कर्मफल कभी टल नहीं सकता। हाँ, विष खानेपर भी जो मेरे शरीरमें फिर-से प्राण आ गये, इसका कारण केवल यह है कि मेरे प्राणोंके स्वामी श्रीजगन्नाथ हैं। अब आपकी सेवामें एक निवेदन है, आपलोग मेरी दरिद्रता-को देखकर अपनी लड़कीका विवाह किसी दूसरेके साथ करना चाहते हैं, यदि आप यही उचित समझते हैं तो ऐसा ही कीजिये, मुझपर दया कीजिये, मैं जाता हूँ; परन्तु बात यह है, यदि आपको धर्मका कुछ भी भय है तो आप मेरी स्त्रीको मुझे सौंप दीजिये, वह मेरे सुख-दुःखकी संगिनी है; मैं उसे अपने साथ ले जाऊँगा, पर उसे देना-न-देना आपके हाथ है। मेरी कोई जोर-जबरदस्ती नहीं है।'

इतना कहकर रघुनाथ उच्चस्वरसे 'मुकुन्द माधव मुरारि' प्रभृति

भगवन्नाम-कीर्तन करता हुआ घरसे बाहर निकलकर रास्तेपर आ गया। सातों पुत्रोंसहित गंगाधरने पीछेसे दौड़कर उसकी बाँह पकड़ ली और कहा—'आप आजभर और ठहर जायँ, कल अपनी पत्नीको अपने साथ ले जाइयेगा, हमें कोई आपत्ति नहीं होगी।' यह सुनकर रघुनाथ वहीं पेड़की छायामें बैठ गया, उसने गंगाधरकी पाप-पुरीमें किसी तरह भी पुनः प्रवेश नहीं किया। उसने निश्चय कर लिया कि 'जिस जगन्नाथने यहाँतक पहुँचाया, जिसने प्राणदान दिये, वही अन्नपूर्णाके सम्बन्धमें भी जो कुछ उचित समझेगा, करेगा।'

गंगाधरके बहुत कुछ समझाने-बुझानेपर भी जब रघुनाथ वहाँसे नहीं उठा, तब वह लाचार होकर अपने पुत्रोंसहित अंदर चला गया।

अन्नपूर्णा मूर्छा खुलनेपर यह समझकर कि स्वामी जी रहे हैं, अपने सोनेके कमरेमें चली गयी थी, परन्तु घरवालोंकी ओरसे उसके मनमें भय बना हुआ था। दुष्ट पिता और भाइयोंने मिलकर उसके कमरेमें ताला लगा दिया, इससे वह बाहर नहीं निकल सकी थी, इसीसे प्रातः-कालकी किसी बातका उसे पता नहीं लगा। वह बेचारी पिंजड़ेमें बंद पक्षीकी तरह कमरेके भीतर छटपटा रही थी। गंगाधरने घरमें आकर अन्नपूर्णाका कमरा खोला और स्त्री-पुत्रोंसहित अंदर जाकर उससे पूछने लगा—'बता अन्नपूर्णा ! तू अपने राहके भिखारी पतिके साथ जाना चाहती है या हमलोगोंके पास रहना पसन्द करती है ?' एक सती रमणीके हृदयपर इस प्रकारके प्रश्नसे कितनी चोट पहुँचती है, इस बातका अनु-मान अभागे पुरुष नहीं लगा सकते। तथापि पिताके सामने पुत्रीका सङ्कोच करना स्वाभाविक है, अतएव अन्नपूर्णाने लज्जापूर्ण स्वरोंमें किन्तु दृढ़ताके साथ कहा—'पिताजी ! अपराध क्षमा करें, मैं अपने पतिके

साथ जाऊँगी। राहके भिखारी हों, कंगाल हों, जो कुछ हों, मेरे तो वही देवता हैं। वही मेरी एकमात्र गति हैं।' यों कहते-कहते दुःख और रोषसे अन्नपूर्णाकी लज्जाका बाँध टूट गया, वह सिंहकी तरह गरज उठी, उसकी आँखोंसे मानो अग्निकी लपटें निकलने लगीं। अब अन्नपूर्णा वह सीधी-सादी अबला अन्नपूर्णा नहीं रही, वह मानो दैत्य-दल-दलिनी दुर्गाकी भाँति दुष्ट दानव-दलको नेत्रानलसे भस्म करनेको तैयार हो गयी। उसने कठोर कर्कश स्वरोंसे कहा—'पिता, पिता! आपलोग मुझे व्यभिचारिणी बनाना चाहते हैं? पतिसे वञ्चित कर मुझे पर-पुरुषके हाथों सौंपना चाहते हैं? नहीं होगा, यह कभी नहीं होगा; मुझे मामूली छोकरी मत समझो, मैं सती हूँ, प्राण रहते मुझे कोई भी छू नहीं सकता। निश्चय समझना, ऐसा होनेसे पहले ही मैं आत्महत्या कर लूँगी और एक सतीके शापसे तुम्हारे सुखका सारा संसार जलकर पलक मारते-मारते खाक हो जायगा!'

जलमें गर्मी कबतक ठहर सकती है? ठण्ढापन ही उसका स्वाभाविक धर्म है। इसी प्रकार शान्त, सरल अन्नपूर्णाका कोप भी अधिक देरतक नहीं ठहर सका, उसने पिताके चरण पकड़ लिये और कातर कोमल-कण्ठसे यों कहना शुरू किया—'पिताजी! मुझपर क्षमा करो, मुझे अपने स्वामीके साथ जाने दो। मैं योगी हूँ तो वह मेरे स्वामी भिक्षाके पात्र हैं। वही मेरे जीवनके एकमात्र अवलम्बन हैं। मुझे रोक रखनेमें आपका भला नहीं होगा। इसीसे मैं हाथ जोड़कर कहती हूँ—मुझे पतिदेवके साथ जानेकी आज्ञा दे दो।'

रघुनाथका प्रभाव और अन्नपूर्णाकी यह अवस्था देखकर डर और चिन्तासे सबने मिलकर अन्नपूर्णाको रघुनाथके साथ भेज देना निश्चय

किया । गंगाधर धन-रत्न लेकर अन्नपूर्णाको रघुनाथके पास ले गया और विनयभावसे उससे कहा—'लो बेटा ! अपनी पत्नीको ग्रहण करो, हमपर दया रखना, जिससे हमारा कोई अमङ्गल न हो !'

अन्नपूर्णाने पतिके चरणोंमें पड़कर अनन्यभावसे आत्म-समर्पण कर दिया, फिर तत्काल उठकर कहने लगी—'प्राणनाथ ! जिधर चलना हो, शीघ्र चलिये, अब यहाँ एक मिनट भी ठहरना ठीक नहीं है । दासी आपके साथ चलनेको तैयार है ।' रघुनाथ पत्नीका हाथ पकड़कर 'जय जगन्नाथ' कहकर पुरीकी राह चल पड़ा ।

गंगाधर घर लौट आया, परन्तु लड़कीको भिखारीके साथ भेजनेसे उसे बड़ा दुःख हुआ । इधर अन्नपूर्णाकी माताने नया षड्यन्त्र रचा । पापीको सदा पापबुद्धि ही सूझा करती है, उसने मन्त्री-पुत्रके पास आदमी भेजकर उससे कहलवाया कि 'अन्नपूर्णाको कंगाल ले जा रहा है, साहस हो तो उसे मारकर अन्नपूर्णाको ले आओ ।' पता नहीं, अन्नपूर्णाकी माताका पुत्रीके स्नेहके नामपर यह मोह था, या महापाप-बुद्धि थी । खैर !

खबर मिलते ही मन्त्री-पुत्र अपने पिताकी सहायतासे कई हजार घुड़सवारोंको लेकर रघुनाथकी खोजमें चला । घुड़सवारोंको पैदल चलनेवालेतक पहुँचनेमें क्या देर लगती है ? पीछेसे रणवाद्य और घोड़ों-की टाप सुननेके साथ ही धूलसे आकाशको छाया हुआ देखकर रघुनाथको बड़ा आश्चर्य हुआ । देखते-ही-देखते दुष्ट समीप आ पहुँचा और चिल्लाकर कहने लगा—'नीच, बदमाश ! मेरे हृदय-धनको चुराकर कहाँ भाग रहा है ? इस सुन्दरीको छोड़कर यहाँसे तुरंत भाग जा, नहीं तो अभी प्राण खो बैठेगा !' रघुनाथने देखा, उसके पीछे हजारों

घुड़सवार हैं, प्रभुकी इस नयी लीलाको देखकर रघुनाथ प्रेममग्न हो गया और निर्भय नेत्रोंसे मन्त्री-पुत्रकी ओर देखकर हँसने लगा। अन्नपूर्णा अवश्य ही बहुत डर गयी। उसने कहा—'पिता मुझे इसी दुष्टके हाथोंमें सौंपना चाहते थे, अब क्या होगा? इस विपत्तिसे कैसे छुटकारा मिलेगा?' सतीके भयपूर्ण वचनोंको सुनकर रघुनाथने जोरसे हँसते हुए कहा—'तुम इतना डरती क्यों हो? तुम नहीं जानती कि श्रीजगन्नाथ मेरे प्रभु हैं? यह विपत्ति ही कौन-सी है? जिसने तुम्हारे साथ मेरा मिलन कराया, जिसने विषसे मरे हुएको जिला दिया, वही इस विपत्तिसे भी उद्धार करेगा। भय और चिन्ताको मनमें स्थान देकर उस नित्यरक्षक प्रभुका तिरस्कार न करो, इन्द्र-ब्रह्मादि देवगण सावधान चित्तसे जिसके चरण-कमलोंका सदा चिन्तन करते हैं, उस प्रभुके रहते हमें डर किस बातका है? तुम तो उसकी लीला देखती ही रहो!'

प्रभुका विचित्र खेल है, रघुनाथ और अन्नपूर्णामें यह बातें हो ही रही थीं कि शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित दो राजपूत घुड़सवार घोड़ोंको बड़ी ही तेजीसे दौड़ाते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने आते ही रघुनाथसे पूछा—'तुम कौन हो? कहाँ जाते हो? तुम्हारे साथ यह सुन्दरी रमणी कौन है? तुम्हारे पीछे यह सेना किसकी और क्यों आ रही है?'

रघुनाथने सारी कहानी सुनाकर कहा—'भाई! मैं तो अनाथ हूँ, मुझे तो एक चक्रपाणि भगवान् जगन्नाथके सिवा अन्य किसीका भी सहारा नहीं है, दूसरा न कोई मुझे शरण देनेवाला है और न मेरा रक्षक है। इसीसे व्याकुल-प्राणोंसे उसकी कृपाकी बाट देख रहा हूँ।' दोनों वीर राजपूतोंने कहा—'तुम्हें कोई भय नहीं है, हमलोग तुम्हारे साथ-साथ चलते हैं। देखें, कौन तुम लोगोंपर आक्रमण करता है?' रघुनाथने

समझ लिया कि यह सब मेरे नाथका ही खेल है। रघुनाथ और अन्न-पूर्णा उनकी छत्रछायामें निर्भय चलने लगे। मन्त्रीपुत्रकी सेनाने देखा, दो राजपूत वीरोंसे देखते-ही-देखते लाखों हो गये। सभी वीर रघुनाथ-अन्नपूर्णाकी रक्षा कर रहे हैं। यह देखकर मन्त्रीपुत्र और उसकी सेना-के सिपाहियोंको जिधर स्थान मिला, उधर ही प्राण लेकर भागे। सर्पको देखकर जैसे मेंढक इधर-उधर छिप जाते हैं इसी प्रकार बात-की-बातमें सारी सेनाके लोग भाग गये। अन्नपूर्णा और रघुनाथको इन सब बातों-का कुछ भी पता नहीं लगा। राज्यकी सीमा पार करनेके बाद दोनों वीरोंने रघुनाथसे कहा—'जाओ, अब तुम्हें कोई भय नहीं है, हमलोग जाते हैं, हमें और बहुतसे काम हैं।' रघुनाथने सैकड़ों प्रणाम करके उनसे कहा, 'वीरो ! आज आपकी कृपासे हमलोग दुष्टोंके हाथसे बचे हैं। आप कोई भी हों, हैं हमारे जीवनदाता। आपके चरणोंमें बारम्बार प्रणाम है।' दोनों वीर मुसकराते हुए वहाँसे चल दिये। पता नहीं, वे ही दोनों साक्षात् नर-नारायण थे या उनकी कोई खास विभूतियाँ थीं। रघुनाथ उन्हें पहचान नहीं सका, परन्तु उसका यह निश्चय अटल था कि करुणामय जगन्नाथकी कृपासे ही उसकी इस महान् विपत्ति-से रक्षा हुई है।

कुछ दिनों बाद दम्पति पुरी पहुँचे। भगवान्का दर्शन करते ही उनकी सारी थकावट दूर हो गयी। पिताके दिये हुए धनसे अन्न-पूर्णाने मन्दिरके दक्षिणकी ओर एक घर खरीद लिया। उसीमें दोनों स्त्री-पुरुष सुखपूर्वक रहने लगे। दोनोंका काम था—कृष्ण-कथा कहना, कृष्ण-नाम-कीर्तन करना, कृष्ण-गुण सुनना, कृष्ण-प्रेममें मग्न रहना, कृष्णके नामपर मतवाले होकर नाचना और आँसू बहाना !

भगवान्के भावसे ही भक्तका भाव है। भक्तका भाव हम देख सकते हैं, भगवान्के भावको देखनेका सौभाग्य सबको नहीं होता। भगवान् अखिल-रसामृत-मूर्ति हैं—भावमाधुर्यके भण्डार हैं। इसीसे उनके रसमें डूबकर उनके भावमें अपनेको भुलाकर जब मतवाला भक्त नाचता-गाता है, तब उसे देखकर पामर-पाखण्डीकी आँखें भी चौंधिया जाती हैं—उसके मन-प्राण भी पिघल जाते हैं। प्रेममत्त भक्त जब अपने भगवान्के मधुर दर्शन करता है तब वे उसे कैसे सुन्दर, कैसे मनोहर दीखते हैं, इस बातका जिसको अनुभव है, वही जानता है। इस रूप-माधुरीका वर्णन वाणी नहीं कर सकती। उस समय भगवान् कुछ विलक्षण हो जाते हैं। उस समय काठ, पत्थर या धातुकी मूर्तिको भेदकर प्रेम-पूर्ण रसमय मधुरातिमधुर मनोहर मूर्ति प्रकट होती है। कभी ऐसी मूर्ति देखनेका सौभाग्य हुआ है? यदि नहीं तो आज मानस-नेत्रोंसे प्रेममग्न रघुनाथको देखो और देखो उसके सामने जगन्नाथको! एक बार इसे देखकर उनको देखो और उन्हें देखकर इसे देखो। तुम भी नित्य मधुर, नित्य नूतन, नित्यानन्दमय माधुर्य-समुद्रके अतल तलमें डूब जाओगे।

रघुनाथ कभी नाचता है, कभी जमीनपर लोटता है, कभी दोनों भुजाएँ उठाकर मर्मकी बात मूक भाषामें प्रभुको सुनाता है, कभी हँसी और आँसुओंसे उनसे बातचीत करता है। तात्पर्य यह कि वह भीतर-बाहरसे हरिमय होकर हरिक्षेत्रमें निवास कर रहा है। सती अन्नपूर्णा भी अपने परमाराध्य परम देवता पतिकी और पतिके भी परमपतिकी सेवामें सदा लगी रहती है।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय!

भक्त दामोदर
और
उसकी आदर्श पत्नी

(१)

दामोदर काञ्ची-नगरीमें रहते थे, जातिके ब्राह्मण थे। इनके कोई सन्तान नहीं थी, घरमें केवल एकमात्र ब्राह्मणी थी। भीख ही इनकी जीविका थी। सारे संसारमें ढूँढ़नेपर भी दामोदरके समान दूसरा दरिद्र भिखारी मिलना कठिन था। दामोदर प्रतिदिन प्रात:काल उठकर स्नान-सन्ध्या आदि नित्यकर्म करते और मस्तकपर चन्दन तथा निर्माल्य तुलसी-दल धारणकर मुखसे 'राम-कृष्ण-हरि' कीर्तन करते हुए भीखके लिये नगरमें चले जाते। भिक्षामें कुछ मिल गया तो अच्छी बात, न मिला

तो कोई असन्तोष नहीं ! रोज जो कुछ मिलता सो लाकर ब्राह्मणीको दे देते, पतिप्राणा ब्राह्मणी बड़े आनन्दसे रसोई बनाती । भगवान्‌के भोग लगाकर दोनों प्राणी वही प्रसाद पाकर प्रसन्न होते । किसी दिन यदि कोई भूखा-प्यासा अतिथि आ जाता तो पहले उसे भोजन कराते । कुछ बच रहता तो खा लेते, नहीं तो वह दिन उपवासमें कटता । किसी दुःखसे नहीं, दम्पति परम आनन्दसे उपवास करते ।

दोनोंका प्रधान काम था श्रीगोविन्दका भजन । वे रात-दिन उसीमें मस्त रहते । परचर्चा नहीं, किसीकी निन्दा नहीं; हृदय जीव-दयासे सदा ही पिघला रहता । घरमें कुछ भी नहीं था, पर वे अपने लिये भगवान्‌से कभी कुछ माँगते नहीं थे । भगवान्‌से वे यदि कभी कुछ चाहते तो केवल जीवोंका कल्याण चाहते । भजन करते-करते जब कभी यह भाव होता कि अब भगवान् दर्शन देंगे तभी वे हाथ जोड़कर प्रार्थना करते—'मङ्गलमय ! जगत्‌के जीवोंने तो तुम्हारी मङ्गलमयी मूर्ति नहीं देखी, वे तो अमङ्गलको ही मङ्गल समझकर गले लगा रहे हैं । नाथ ! उनपर दया करो, उनका भ्रम दूर करो, तुम्हारी आनन्द-मन्दाकिनीकी पवित्र धारासे उनके हृदयको सींच दो । हिंसा-द्वेष भूलकर सभी परस्पर प्रेम करें । तुम्हारी सर्वकल्याणमयी मूर्ति सबके हृदयोंमें सदा जाग्रत् रहे ।'

(२)

चमड़ेसे ढके रहनेपर भी कस्तूरीकी सुगन्ध बाहर फूटे बिना नहीं रहती । इसी प्रकार दामोदरके यशकी सुगन्ध भी उसके फटे चिथड़े और टूटी झोंपड़ीके परदेको भेदकर देशभरमें फैल गयी । क्रमशः वह उस असली देशतक भी जा पहुँची ! उस देशके रसिक नरेश

महामहेश्वर उसी गन्धके सहारे एक दिन काञ्ची-नगरीमें आ उपस्थित हुए। उद्देश्य था—असल-नकलकी परीक्षा करना। ये नरेश हैं बड़े मायावी ! आते ही बूढ़े संन्यासी बन गये। शरीर इतना दुर्बल और वृद्ध कि मानो एक कदम चलनेकी भी शक्ति नहीं है। लाठीके सहारे धीरे-धीरे चलते हुए आप आ विराजे दरिद्र दामोदरके दरवाजेपर !

भगवान्‌की माया थी, दामोदरको उस दिन भीखमें एक मुट्ठी चावल भी नहीं मिला। वह खाली हाथ ही घर लौटे। पति-पत्नी दोनों भूखे ही जमीनपर लेटकर चिन्तामणिके चारु चरणोंका चिन्तन करने लगे।

वे मन-ही-मन कहने लगे—'प्रभो ! तुम स्वामी हो, निग्रह-अनुग्रह जो चाहो सो कर सकते हो, पर दीनोंको तुम्हारे सिवा और किसका सहारा है ? उनके तो एकमात्र बन्धु तुम्हीं हो, इसीसे लोग तुम्हें अपार करुणासागर और दीनबन्धु कहते हैं, जिनकी रक्षा करनेवाला और कोई नहीं है, तुम्हीं उनकी रक्षा करनेवाले हो। नाथ ! तुम वज्र-कवच-की तरह अपने सेवकके शरीरपर रहकर उसके सारे दोष दूर कर देते हो ! प्रभो ! तुम दुर्जनरूप मेंढकोंके लिये कालसर्प हो, जगत्‌के लोगों-के लिये अमूल्य चिन्तामणि हो, मदोन्मत्त मानव-मातङ्गके लिये साक्षात् केसरी हो, सम्पूर्ण जीवोंके स्वामी हो, इसीसे आज यह क्षुद्रादपि क्षुद्र अधम जीव तुम्हारी शरणागत हुआ है। इसे एक भयसे बचाओ, प्रभो ! शीघ्र बचाओ ! भय और कुछ भी नहीं है, महामहिम नामकी अपार महिमासे यह दास जगत्‌के तुच्छ भयकी तो बात ही क्या है, महान् मृत्यु-भयसे भी नहीं डरता। यह किसी ऐसे भयके नाशके लिये प्रार्थना भी नहीं करता। इसको तो भय यही है कि इस समय यदि कोई अतिथि आ गया तो उसको भोजन कहाँसे दिया जायगा ?'

'जहाँ बाघका डर था वहीं साँझ हुई ।' दामोदर और उनकी पत्नी यह चिन्ता कर ही रहे थे कि उनके कानोंमें अतिथिके इन करुण-स्वरोंने प्रवेश किया, 'घरमें कौन है ? मैं अतिथि तुम्हारे दरवाजेपर खड़ा हूँ ।' अतिथिका कातर करुण कण्ठस्वर कर्णछिद्रोंमें प्रवेश करते ही दामोदर हड़बड़ाकर बाहर आये । देखा, एक थके-हारे जराजीर्ण तेजोमय योगी महापुरुष खड़े हैं । दामोदरने भक्तिभावसे साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया और अत्यन्त विनीत भावसे हाथ जोड़कर उनसे पूछा—'स्वामिन् ! दासके प्रति क्या आज्ञा है ?' साधु बोले—'भाई ! तुम्हारी बड़ी कीर्ति सुनी है । सुना है, तुम अतिथि-अभ्यागतको बड़े ही स्वागत-सत्कारसे भोजन देते हो । मैं चाहे जिसके घरमें भोजन नहीं करता, अतिथि-सेवामें जिसकी श्रद्धा नहीं है, ऐसे मनुष्यके तो गले पड़नेपर भी मैं भोजनके लिये उसके घरकी तरफ नहीं ताकता, परन्तु श्रद्धालु भक्तोंका अन्न माँगकर खा लेता हूँ । अतिथि-सेवकोंकी श्रेणीमें तुम्हारा नाम प्रायः ही सुनता हूँ, इसीसे तुम्हारे अन्नके लिये मेरा मन बहुत ललचा उठा ! आज सोचा, चलो एक बार दामोदरदासके घर ही भोजन कर आवें, इसीलिये आया हूँ, भाई, पुराना शरीर है, चलना-फिरना कठिनतासे होता है, तुम्हारा अन्न पानेके लोभसे ही यहाँतक चला आया, कहो, मुझे एक मुट्ठी अन्न मिलेगा या नहीं ?'

दामोदरदास जिस बातके लिये डर रहे थे, वही हो गयी ! अतिथिकी बात सुनकर दामोदरको बड़ी चिन्ता हुई, आखिर, '*होइहैं सोइ जो राम रचि राखा*' समझकर दामोदरने ठण्डे जलसे योगीके पैर धोकर मीठे स्वरसे कहा—'महाराज ! आपको बहुत ही थका हुआ देखता हूँ । आप इस कुशाके आसनपर तनिक विश्राम करें, मैं अभी आता हूँ ।'

इतना कहकर दामोदरने ब्राह्मणीके पास जाकर धीरेसे कहा—'सति! द्वारपर अतिथि आये हुए हैं, भोजन चाहते हैं, घरमें तो कुछ भी नहीं है, अब क्या किया जाय।' ब्राह्मणी बोली—'स्वामिन्! मैं क्या बतलाऊँ, आपसे तो कुछ छिपा नहीं है, घर-द्वार बेचनेपर भी एक भी कौड़ी मिलना कठिन है। घरमें एक कपड़ा होता तो उसे बेचकर ही कुछ ले आते, मेरे पास तो वह भी नहीं है। फटा चिथड़ा और मिट्टीकी यह फूटी हाँड़ी, यही तो अपने घरकी कुल सम्पत्ति है। इनके बदलेमें कौन क्या देगा?' इतना कहनेपर अतिथि-सत्कारमें अपनी अयोग्यता समझकर सतीके आँखोंमें आँसू आ गये। पत्नीकी यह हालत देखकर दामोदरकी आँखें भी डबडबा आयीं। उन्होंने एक लंबी साँस छोड़कर कहा—'तब क्या होगा सती! क्या अतिथि-सेवा नहीं होगी? अतिथि भूखा लौट गया तो फिर अपना जीवनसे ही क्या प्रयोजन है? गोविन्द! इतनी कठोर परीक्षा क्यों?'

ब्राह्मणी चिन्तित होकर व्याकुल हृदयसे श्रीहरिको पुकारने लगी और क्षणभरके बाद ही वह अपनी हँसीसे दामोदरको चौंकाती हुई बोली—'नाथ! इतने कातर क्यों होते हैं? हमारे प्रभु तो जगन्नाथ हैं, वे निश्चय ही अतिथिके लिये अन्न देंगे। आप एक काम करें, नाईके घरसे तुरंत एक कैंची माँग लावें, फिर मैं उपाय बतलाऊँगी।' दामोदर क्या करते, जल्दीसे दौड़कर कैंची माँग लाये और ब्राह्मणीसे कहने लगे—'कहो, अब क्या करना होगा?' उसने हँसकर अपने लंबे-लंबे केश दिखलाते हुए कहा—'देखिये, मेरे इन सुन्दर बालोंको कैंचीसे काट डालिये, फिर हम दोनों मिलकर इनकी बेणी बाँधनेकी डोरी बट लेंगे, आप उसे बेचकर कुछ पैसे ले आइये। इतना

सहारा होनेपर अतिथिसेवाके लिये क्या चिन्ता है ?'

दामोदर ब्राह्मणीकी इस अनोखी सूझ और उसकी मनोहर त्याग-वृत्तिपर मुग्ध होकर अपने हाथों उसके बाल काटने लगे। चारों ओर थोड़े-थोड़े बाल छोड़कर बीच-बीचके सब केश एक ही सर्राटेमें काट डाले। दोनोंने मिलकर तुरंत एक सुन्दर डोरी बट ली। दामोदर उसे बेचने बाजार गये, सौभाग्यवश एक ग्राहक भी मिल गया, उसने कुछ पैसे देकर वह डोरी खरीद ली। दामोदर उन पैसोंसे अतिथिसत्कारके लिये दाल, चावल, घृत, दूध, दही, तरकारी आदि सब चीजें खरीद-कर बड़े आनन्दसे हँसते हुए धर्मशीला पत्नीके पास आये और उन्होंने सब चीजें उसके पास रख दीं। ब्राह्मणी रसोई बनानेमें बड़ी ही चतुर थी। देखते-देखते ही उसने रसोई बना ली। दामोदरने बाहर जाकर अतिथिदेवसे भोजन करनेके लिये प्रार्थना की। अतिथि घरके अंदर आये, दोनों स्त्री-पुरुषोंने बड़े आदरसे उनके चरण पखारे, श्रद्धा-भक्ति-से चरणोदक लिया और अपने सिरोंपर छिड़का। आज दम्पतिके आनन्दका पार नहीं है।

वास्तवमें आज इनके भाग्यकी महिमा कौन कह सकता है ? ब्रह्मा अपने कमण्डलुमें रखकर भी जिस जलकी एक बूँद नहीं पा सकते, आज इन्होंने घर बैठे अनायास ही उस पावन पादोदकका पान कर लिया ! भगवान् भावके वश हैं। जहाँ भाव-कमल खिलता है, वहीं वे मधुलोभी मधुकरकी भाँति आ उपस्थित होते हैं, परन्तु भावहीन मनुष्य किसी तरह भी उनसे भेंट नहीं कर सकता। अस्तु !

(३)

ब्राह्मणके घर एक टूटी चौकी थी, उसीपर बड़े आदरसे पति-

अतिथि-सत्कार

पत्नीने साधुको बैठाया ! केलेके पत्तेपर भोजन परोसा गया। ब्राह्मणी परोसने लगी, दामोदर हवा करने लगे और लीलामय श्रीगोविन्द महान् आनन्दसे भोजन करने लगे। 'साधु बहुत बूढ़े हैं, अधिक नहीं खा सकेंगे' यह सोचकर ब्राह्मणीने थोड़ा-सा ही सामान परोसा था, पर वह माया-वृद्ध हरि तुरंत ही सब सामान चट कर गये और बोले—'बड़ी अच्छी रसोई बनी है, कुछ है तो और दो, आज भोजन करनेमें बड़ी ही तृप्ति हो रही है।' ब्राह्मणीने, जो कुछ बच रहा था, तुरंत लाकर उनकी पत्तलमें परोस दिया। अन्तर्यामी जान गये कि इनके घरमें खानेको और कुछ भी नहीं है, इसलिये पोंछ-पाँछकर सब कुछ खा गये। फिर हाथ-मुँह धोकर आरामसे बैठे पान चबाते हुए सोचने लगे—'अहो ! इनका जीवन धन्य है, घरमें कुछ भी नहीं है, सामानमें एक फटा चिथड़ा और फूटी हँडियामात्र है पर अतिथिसेवामें इनका कितना अपूर्व अनुराग है। मुझको सब कुछ खिलाकर दोनों भूखे रह गये परन्तु इनके चेहरेपर कहीं जरा-सा भी असन्तोष नहीं है। जिन सिरके बालोंके लिये स्त्रियाँ न मालूम क्या-क्या करती हैं, आज अतिथि-सेवाके लिये उन बालोंके कटवानेमें ब्राह्मणीमें तनिक-सी भी आसक्ति देखनेमें नहीं आयी, इनकी समता जगत्‌में किससे हो सकती है ?

भावके भूखे भक्तिप्रिय माधव प्रिय भक्तके प्रेम-भावमें डूबकर न मालूम क्या-क्या सोचने लगे, कुछ देर बाद दामोदरदासको अपने पास बुलाकर बोले—

'भक्त ! तुमलोगोंकी सेवासे मुझे बड़ा ही सन्तोष हुआ है, भाई ! देखते हो, अब रात हो गयी है, वृद्ध शरीर है, मालूम होता है आज इस रातके समय मैं चल नहीं सकूँगा। रात यहीं बिताकर सुबह जाऊँगा।

मेरे भोजनके लिये अधिक सामान इकट्ठा करनेकी आवश्यकता नहीं, एक हँडिया चावलसे ही काम चल जायगा !'

दामोदरने 'जो आज्ञा' कहकर पत्नीके पास जाकर चिन्ताग्रस्त मनसे कहा––'सती ! अतिथिमें आज चलनेकी ताकत नहीं है, वे रातको यहीं रहेंगे, अब भोजनके लिये क्या उपाय किया जाय ?' पतिव्रता ब्राह्मणीको तो उपायका पता था, उसने हँसते हुए कहा, 'इस बातकी क्या चिन्ता है ? इन बचे हुए बालोंको काट डालिये, अभी डोरी बट लेंगे, आप उसे बेचकर सामान ले आइये । इतना घबड़ाते क्यों हैं ?' पत्नीकी बात सुनकर दामोदरका हृदय भर आया, उन्होंने सिरके सारे केश काट डाले । दोनोंने उसी समय डोरी बट ली, पहलेकी भाँति उसे बेचकर ब्राह्मण सामान ले आये । ब्राह्मणी प्रफुल्लित-चित्तसे रसोई बनाने लगी । ब्राह्मणीने केशरहित सिरको एक चिथड़ा लपेटकर ढक लिया ! पुण्यव्रती सतीके इस अद्भुत त्यागसे अतिथिसेवा सम्पन्न हुई जानकर तो दामोदरको बड़ा आनन्द है पर जब ब्राह्मणीके सिरकी ओर दृष्टि जाती है तब उनके लिये आँसू रोकना कठिन हो जाता है ।

रसोई बनी, अतिथि जीमने बैठे, 'थोड़ा-सा और, थोड़ा-सा और' कहते-कहते उन्होंने सारा सामान फिर चट कर डाला । एक चींटीका काम चले, इतना-सा अन्न भी नहीं बचा । अतिथिने हाथ-मुँह धोया, दामोदरने उनके सोनेके लिये घास-पत्तोंका फटा-टूटा आसन बिछा दिया, साधु उसीपर प्रसन्नतासे सो गये !

जो नारायण शेषनागकी शय्यापर, गरुड़की पीठपर, मुनियोंके हृदयोंमें या भोलानाथ शङ्करके अन्तस्तलमें विराजते हैं, वे ही आज भक्तके प्रेमवश 'कुश-किसलय' के बिछौनेपर आरामसे सो रहे हैं । धन्य है

भक्तके विशुद्ध प्रेमको और धन्य है उन प्रेमाधीन परमात्माको !

दामोदर धीरे-धीरे चरण दबाने लगे और उनकी पत्नी साड़ीके फटे आँचलसे धीरे-धीरे हवा करने लगी और भगवान्—प्रेममें आत्म-विस्मृत प्रभु वैकुण्ठके सुखको अत्यन्त तुच्छ समझकर मानो सुखकी नींद लेने लगे।

अतिथिको सोये हुए देखकर ब्राह्मणीने पतिसे कहा, 'अहा ! साधु महाराज बहुत ही बूढ़े हैं, इस कमजोर शरीरसे यह सुबह भी कैसे चल सकेंगे ? कल सबेरे आप भीखके लिये शहरमें जाइये, भाग्यवश जो कुछ मिल जायगा, उससे इनकी सेवा की जायगी, हमलोग आजकी तरह कल भी भूखे ही रह जायँगे ।' जैसी ब्राह्मणी वैसे ही ब्राह्मण, उन्होंने कहा, 'हाँ हाँ, ठीक ही तो है ।'

जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनोंसे अतीत हैं, उनका सोना-जागना कैसा ? भगवान् आँख मूँदे सब सुन रहे हैं, पति-पत्नीकी मधुर वाणी और उनकी अतिथि-वत्सलता देखकर भगवान्‌की आँखें डबडबा आयीं । अहा ! आँखके एक कोनेसे करुणाकी धारा भी बह चली ! अब भगवान् नहीं रह सके, तुरंत माया-निद्रासे ब्राह्मण-दम्पतिको सुलाकर आप उठ बैठे । देखा, पति-पत्नी दोनों चरणोंमें पड़े हैं । भगवान्‌ने तुरंत पतिव्रताके मुण्डित मस्तकपर हाथ रक्खा और उसे फिराते हुए वे बोले—'पतिव्रता ! माता ! अहा, इस 'माता' शब्दमें कितना मिठास है, जरा फिर तो कहूँ, माता ! माता ! तेरा मस्तक कुञ्चित केशोंसे अभी पूर्ण हो जाय माँ ! तेरा समस्त शरीर नाना प्रकारके मणिरत्नोंके आभूषणोंसे चमकने लगे । माता ! तेरे समस्त अंग सौन्दर्य-सुषमासे भर उठें !' भगवान् ज्यों-ज्यों बोलते गये, त्यों-ही-त्यों वैसा ही होता गया । भगवान् उठ खड़े हुए, चारों ओर देखा, फिर करुणा-

भरे कण्ठसे कहने लगे—'कुटिया ! तू राजमहल बन जा !' तुरंत वैसा ही हो गया, प्रभु फिर बोले—'गृहद्वार ! तू धन-रत्नोंसे भर जा !' वही हो गया। अब भगवान्‌ने दोनोंके मस्तकपर हाथ रखकर अमृतवर्षा करते हुए कहा—'अरे ! तुम दोनों जबतक जीओ, सुखसे जीओ और जीवन पूरा होनेपर सीधे वैकुण्ठमें चले आओ। मैं तुम्हारा जीवन-मरणका साथी सदा तुम्हारे साथ रहूँगा !' धन्य है !

भक्तको दुर्लभ आशीर्वाद देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। सबेरा हुआ, ब्राह्मणी जागी, आँखें खोलते ही आश्चर्यमें डूब गयी। सोचने लगी, 'अरे, क्या मैं वही हूँ, मेरा साड़ीका फटा चिथड़ा कहाँ गया ? यह बहुमूल्य वस्त्र कहाँसे आ गये ? मेरा शरीर गहनोंसे कैसे लद गया ?' वह सिरपर हाथ रखकर सोचने लगी। हाथसे केशोंका स्पर्श होते ही ब्राह्मणीका आश्चर्य और भी बढ़ा—हैं ! मुँड़े सिरमें रातोंरात इतने सुन्दर बाल कैसे पैदा हो गये ! अरे ! इस पुराने शरीरमें इतना सौन्दर्य कहाँसे आ गया ? मैं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ ? वह बूढ़ा साधु कहाँ गया ? ब्राह्मणी घबड़ाकर उठी, अब तो उसके आश्चर्यकी कोई सीमा नहीं, न वह झोंपड़ी है, न घास-पत्तोंका बिछौना है। न फूटी हँडिया है और न फटा चिथड़ा है। ब्राह्मणी भी सुदामाकी तरह हकबकाकर कहने लगी—

फूटी एक थारी बिन टोंटनीकी झारी हुति,
बाँसकी पिटारी औ पथारी हुती टाटकी।
बेंटे बिनु छुरी औ कमण्डलु हौ टोकबो हौ,
टूटो हुतो पोपौ पाटी टूटी एक खाटकी॥
पथरौटा काठको कठौता कहूँ दीसै नाहिं,

पीतरको लोटो हो कटोरो हो न बाटकी ।
कामरी फटी-सी हुती डोंड़नकी माला नाक,
गोमतीकी माटीकी न सुध कहूँ माटकी ॥

[नरोत्तम कवि

अहो, इतना बड़ा महल, इतने बड़े-बड़े कमरे, सभी मणि-रत्न, धन-धान्य और गहने-कपड़ोंसे भरे-पूरे हैं । अरे, स्वामीका भी तो रूप बदल गया ! यह कामदेवकी-सी छवि कैसे बन गये ? क्या आश्चर्य है ! ब्राह्मणीने व्यग्र होकर पल्ला खींचकर पतिको जगाया और ऊँची आवाज-से कहने लगी—'नाथ ! देखिये तो सही, क्या आश्चर्य है ।' दामोदर आँख मलते हुए 'क्या-क्या' कहकर उठ बैठे और चारों ओर आश्चर्यसे ताकने लगे । सती अब विलम्ब नहीं सह सकी, पतिका हाथ पकड़कर बाहर ले गयी और बोली—'नाथ ! यह सब पीछे देखियेगा, पहले चलकर अतिथिको तो ढूँढ़िये । वे कहाँ चले गये ? वे साधारण साधु नहीं थे !' दामोदरने देखा, पहलेकी कोई भी वस्तु नहीं है । सब कुछ बदल गया है । दुःख-दरिद्रताके भस्मस्तूपको भेदकर देवदुर्लभ ऐश्वर्य-के शीतल प्रकाशकी मनोहर किरणें चारों ओर छिटक रही हैं । ब्राह्मण आगे नहीं बढ़ सके, प्रेममग्न अवस्थामें वे वहीं खड़े रह गये ! शरीर पुलकित हो गया, आँखोंसे अश्रुधारा बह चली ! दामोदरने गद्गदस्वरसे कहा,—'प्रिये ! ठहरो, वह वृद्ध अतिथि क्या कोई मनुष्य थे, जिन्हें ढूँढ़ने बाहर जाऊँ ? वे जब दया करके दर्शन देना चाहते हैं तब अंदर ही उनसे भेंट हो जाती है । जबतक उनकी इच्छा नहीं होती तबतक बाहर-भीतर चाहे जितना भटकनेपर भी उनका पता नहीं चलता ! बताओ ! उन सनातन परम पुरुषको खोजने कहाँ जाऊँ ? वे हैं तो

सभी जगह हैं, नहीं तो कहीं भी नहीं ! दर्शन देना चाहें तो यहीं दे सकते हैं, नहीं तो कहीं नहीं। क्या अब भी तुम उनको नहीं पहचान सकी ? जिनके नामसे पानीपर पत्थर तैर गये, जिनके चरणस्पर्शसे पत्थरकी अहल्या सुन्दरी मुनिपत्नी बन गयी, जिनके अंग-स्पर्शसे कुब्जा परम रूपवती हो गयी, उन भक्तभावन भगवान्‌के सिवा ऐसा काम कौन कर सकता है, अपने चेहरोंकी तरफ तो देखो ! जो इस दृश्यरूप विश्वब्रह्माण्डका सृजन, पालन और संहार करते हैं वही पुराणपुरुष वृद्ध अतिथिके रूपमें तुम्हारा घर पवित्र करने पधारे थे। सती ! देवी ! आओ, आओ, हम उनकी शरण हो जायँ। कातर-स्वरसे उनसे क्षमा-याचना करें। अरे, हमने तो उनको साधारण मनुष्य ही समझा था, न मालूम उनकी सेवामें कितनी त्रुटियाँ रह गयी हैं। हाय ! हमने हाथ लगा रत्न खो दिया !' इतना कहकर वे दोनों स्तुति करने लगे—

'प्रभो ! करुणासिन्धु ! हमारे अपराध क्षमा करो, हमसे भूल हो गयी है, परन्तु तुम तो नाथ ! करुणाके अपार सागर हो। देव ! तुम इस ब्रह्माण्डके एकमात्र स्वामी हो, प्रत्येक जीवके हृदयमें नित्य विहार करते हो, तुमसे कुछ भी तो छिपा नहीं है, इसीसे यह प्रार्थना है नाथ ! हमारे अज्ञानकृत अपराधके लिये क्षमा करो !'

दामोदरदास और उनकी पत्नीने प्रेमावेशमें बहुत देरतक भगवान्‌की स्तुति की, दोनों रोये, जमीनपर लोटे और बेसुध हो गये। अन्तमें चेतना होनेपर महामहोत्सवकी तैयारी करने लगे। उनका सारा जीवन भगवत्-सेवा और भगवत्-सेवाके भावसे ही भगवत्-रूप भक्तोंकी सेवा और गो-ब्राह्मण तथा दीन-दुःखियोंकी सेवामें ही बीता। देहावसान होनेपर दोनों दिव्य देह धारणकर वैकुण्ठमें श्रीवैकुण्ठनाथकी सेवा करने लगे !

भक्त गोपाल चरवाहा

उत्तर-प्रान्तकी कमलावती-नाम्नी नगरीमें एक ग्वाला रहता था। उसका नाम था गोपाल। जैसा नाम, वैसा ही उसका काम भी था— गायें चराकर उन्हींसे आजीविका चलाना। गोपाल न तो पढ़ा-लिखा था और न कभी उसने कोई कथा-वार्ता ही सुनी थी। आचार-विचार भी वह नहीं जानता था। वस्तुतः ऊपरके आचार-विचारोंमें कोई विशेष महत्त्व भी नहीं है। सच्चा आचार है अपने आचरणोंको भगवान्‌के अनुकूल रखना और सच्चा विचार है निरन्तर भगवान्‌का चिन्तन करना। जबतक मनुष्य इस प्रकारके आचार-विचारसे सम्पन्न नहीं होता, तबतक वह भगवान्‌का प्रियपात्र नहीं बन सकता। गोपाल इसी तरहका शुद्ध आचार-विचारी था, वह दिनभर गायोंको साथ लिये जंगलमें घूमता। घरमें स्त्री-पुत्र थे, परन्तु वह उनकी कोई विशेष चिन्ता नहीं करता। न कभी घर जाता। दुपहरको स्त्री छाक पहुँचा देती। गोपाल रूखी-

सूखी खाकर पशुओंके साथ पशुकी भाँति विचरता। उसमें सबसे बड़ा एक सद्गुण यह था कि उसका श्रीहरिके पवित्र नाममें बड़ा विश्वास था, श्रीहरि-नामको वह परम कल्याणरूप समझता और सुबह, शाम बड़े प्रेमसे नामोच्चारण करता! वास्तवमें श्रीहरिनामका प्रेमी ही सबसे ऊँचा महात्मा है।

तुलसीदासजी महाराजने कहा है—

तुलसी जाके बदनतें, धोखेहु निकसत राम।
तिनके पगकी पगतरी, मोरे तनुको चाम॥
नीच जाति स्वपचहु भलो, जपत निरन्तर नाम।
ऊँचो कुल केहि कामको, जहाँ न हरिको नाम॥

× × ×

दिन जाते देर नहीं लगती। गोपालकी उम्र लगभग पचास वर्षकी हो गयी। बराबरीवाले उसकी दिल्लगी उड़ाते हुए ताना मारते कि 'यों राम-राम रटनेसे वैकुण्ठके विमानका पाया हाथ नहीं आनेका' गोपालको ऐसा ताना मन-ही-मन बहुत बुरा लगता पर वह कुछ भी जवाब नहीं देता। एक दिन किसी राह-चलते संतने दिल्लगी उड़ानेवालोंका यह ढंग देखकर उनसे कहा—'भाइयो! तुम लोग बड़ी गलती कर रहे हो। जो गुरुद्वारा समझकर सच्चे मनसे भगवान्‌का पावन नाम लेता है वह अनायास ही इस दुःखमय भवसागरसे तर जाता है। उसको बड़े-बड़े राजा-महाराजाओंके सुखकी तो बात ही क्या है, ब्रह्मलोकके सुखसे भी अनन्तगुणे अधिक परम सुखरूप परमात्माके परम धामकी प्राप्ति होती है। यदि यह बूढ़ा चरवाहा बिना समझे भी भगवान्‌का नाम लेता है,

तो भी प्रभुके नामकी ऐसी महिमा है कि उसको नामके प्रतापसे परम धामका सीधा मार्ग बतानेवाले गुरु अवश्य मिल जायँगे। जिस प्रकार बिना समझे भी अग्नि छू जानेपर मनुष्य जल जाता है, उसी प्रकार भगवान्‌का नाम भी सारे पापोंको भस्म कर डालता है। यदि कोई मूर्ख आदमी बिना सोचे-समझे यों ही भगवान्‌का नाम लेता रहे तो उसपर दया करके सच्चा ज्ञान बतलाकर परमार्थके पथपर आगे बढ़ा देनेवाले कोई-न-कोई महात्मा उसे अवश्य मिल जाते हैं और अन्तमें निश्चय ही उसका उद्धार हो जाता है।'

संतकी बातें सुनकर दिल्लगी उड़ानेवाले लोग कुछ शरमा गये। गोपाल भी इन सारी बातोंको सुन रहा था। संतकी वाणी, उसका स्वरूप और भगवन्नामकी महिमाका गोपालके हृदयपर कुछ विलक्षण ही असर हुआ। उसने पास आकर संतके पैर पकड़ लिये और गुरु-दीक्षा देनेके लिये प्रार्थना की। संतकी अवस्था गुरु बननेकी भावनासे बहुत ऊँची उठ चुकी थी, वह भगवत्-प्रेमकी मस्तीमें विचरा करते थे। चरवाहे-की प्रार्थना सुनकर स्वाभाविक दयासे उन्होंने कहा—'देख, भाई! मुझसे तो गुरु बननेका काम होगा नहीं, परन्तु तुझे गुरुकी अवश्य ही आवश्यकता है। जैसे अनुभवी केवट बिना नाव नहीं चलती, इसी प्रकार भवसागरकी भयानक तरंगोंसे बचाकर जीवन-नौकाका सञ्चालन करनेके लिये भी अनुभवी गुरु अवश्य चाहिये। अतएव तुझको भी उपयुक्त सद्-गुरुकी शरण होकर अपनी जीवन-नौकाका डाँड़ उनके हाथोंमें सौंप देना चाहिये। फिर तू बिना किसी भयके सुखपूर्वक और शीघ्र ही अपार संसार-समुद्रके परले पार पहुँच जायगा। फिर तू भी सच्चा साधु बन जायगा

और कृपासिन्धु भगवान् दया करके तुझे दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे। भाई गोपाल! इसी तरह अबतक अनेक लोगोंका उद्धार हो चुका है। इस राहसे समय-समयपर बहुत अच्छे साधु-महात्मा आया-जाया करते हैं, कोई-न-कोई मिल ही जायँगे। जिनके दर्शनसे पापोंकी वासना नष्ट हो जाय, हृदयमें सात्त्विक भाव उत्पन्न हों, जिनके शब्द सुनते ही मनमें अद्भुत आनन्द हो, जिनके चरण-स्पर्शसे चित्तमें भगवत्-प्रेमकी बिजली-सी दौड़ जाय, उन्हींको अपना गुरु बना लेना।'

गोपालको साधुकी बात सुनकर और यह जानकर, कि मुझको भी प्रभुके दर्शन हो सकते हैं बड़ा ही आनन्द हुआ। उसका हृदय उत्साहसे भर गया। संत तो इतना कहकर अपनी राह चल दिये। गोपालने गुरु करना निश्चय कर लिया। उसने अपनी इच्छा इष्ट-मित्रोंको सुनायी, उन्होंने कहा—'ऐसा गुरु तुझे मिलेगा कहाँ?' गोपालने सरलतासे कहा—'मिलेगा क्यों नहीं?' संत कह गये हैं न इस रास्ते बहुत-से साधु-महात्मा आया-जाया करते हैं, कोई-न-कोई मिल ही जायगा। उन्होंने लक्षण भी तो बतला दिये हैं, मैं तुरंत पहचान लूँगा। गुरु मिलनेपर मैं उन्हें ताजा-ताजा दूध पिलाऊँगा, तब वे मुझपर राजी हो जायँगे। मैं कहूँगा, 'गुरुजी! मैं तुम्हारे बड़े भारी ज्ञानको नहीं समझ सकूँगा मुझे तो बस, एक ही बात बतला दो, मैं जी-जानसे उसका पालन करूँगा, मुझसे बहुत झंझट नहीं हो सकेगा। गुरुदेव मेरी प्रार्थना सुनकर मुझे अवश्य अपना लेंगे।' इष्ट-मित्र गोपालकी बात सुनकर हँसने लगे।

गोपाल अब गुरुकी बाट देखने लगा। ज्यों-ज्यों दिन बीतते थे

त्यों-ही-त्यों उसकी उत्कण्ठा भी बढ़ती जाती थी। अभीतक तो उसके केवल गायें चरानेका ही एक काम था, अब एक नया काम और पल्ले बँध गया। गोपाल बार-बार राजपथपर जाकर बैठ जाता, आते-जाते लोगोंके चेहरेकी ओर टकटकी लगाकर देखा करता। राह चलते लोगोंसे पूछता कि 'आपने इधर किसी संतको आते देखा है ?' कभी पेड़ोंपर चढ़कर दूरसे देखता। इस प्रकार उसका मन गुरुके लिये बहुत ही व्याकुल रहने लगा। वह कभी-कभी अधीर होकर रोने लगता। क्रमशः उसकी आतुरता बढ़ती गयी। अब उसे तनिक-सी भी चैन नहीं है। आँखोंके आँसू कभी सूखते ही नहीं। सच्ची चाह पूरी होते देर नहीं लगती। *'जेहि कर जेहिपर सत्य सनेहू। सो तेहि मिले न कछु सन्देहू ॥'* हृदयमें सच्ची उत्कण्ठा हो और अधीरता बढ़ जाय तो ऐसे प्रेमी पुरुषको शिष्य बनानेके लिये भगवान् स्वयं गुरुदेव बनकर पधार सकते हैं। सच्ची लगन होनी चाहिये।

आतुर गोपालको अब गुरु मिलनेमें देर नहीं हुई, भगवान्‌की प्रेरणासे एक परम भागवत संत उसी ओर चले, जहाँ गोपाल गुरुकी खोजमें बैठा था। गोपाल तो प्रतीक्षामें था ही, महापुरुषको दूरसे देखते ही उसके हृदयमें आनन्द छलकने लगा। अपनी कुछ विलक्षण स्थिति देखकर वह तुरंत पुकार उठा कि 'अहाहा ! मुझे भवसागरसे पार पहुँचानेवाले गुरुदेव आ रहे हैं।' गुरुदेवको ताजा दूध पिलाना होगा, अतएव गोपाल दौड़कर गाय दुहने बैठ गया, उसके मनमें अनेक प्रकारकी मनोरथ-तरंगें उछलने लगीं। इतनेहीमें वह शान्त, शिष्ट, सौम्य, आनन्द और तेजोमयी मूर्ति समीप आ गयी। गोपाल गाय दुहना बीचमें ही छोड़कर दौड़ा। उसके एक हाथमें दूधका बरतन और दूसरेमें गायें हाँकनेका

डंडा था। इसी स्थितिमें गोपाल पुकारने लगा—'महाराज ! ठहरो, ठहरो ! तनिक-सा दूध तो पीते जाओ !' आतुर आवाज सुनकर साधु ठहर गये, इतनेमें गोपालने उनके पास पहुँचकर उनके चरणोंमें सिर झुका दिया। दोनों हाथ तो रुके हुए थे, इससे वह चरणोंको नहीं पकड़ सका। तदनन्तर उसने स्वाभाविक ही शुद्ध और सरलभावसे कहा—'हे देव ! तुम मुझे भवसागरके उस पार ले चलो। लो, लो, यह दूध पीओ और मुझे उपदेश देकर कृतार्थ करो।' इतना कहकर उसने दूधका बरतन और डंडा अलग रख दिया और दोनों चरणोंमें लिपटकर कहा—'मुझे उपदेश दो, गुरुदेव, मेरा उद्धार करो, ऐसा किये बिना मैं तुम्हारे चरण नहीं छोड़ूँगा।'

संत एक बार तो यह सब देखकर अवाक्-से रह गये, परन्तु गोपालका सरल भक्ति-भाव देखकर उनका हृदय दयासे भर गया। गोपालकी आँखोंसे बहती हुई आँसुओंकी दरदरित धारा उसके विशुद्ध हृदयका विश्वास दिला रही थी। संतने कहा—

'भाई ! तू उठकर बैठ, मेरे पैर छोड़ दे, अपने घर चल, वहाँ किसी एकान्त पवित्र स्थानमें तुझे दीक्षा दूँगा। तेरा शरीर देखनेसे पता लगता है कि तैंने कई दिनोंसे स्नान नहीं किया है, अब तुझे स्नान करना चाहिये।' गोपाल बोला—

'महाराज ! मैंने तो बस, जङ्गलमें रहकर केवल गायें चराना ही सीखा है, मुझे न तो घर-बारकी कोई चिन्ता है, न मैं कभी घर जाता हूँ और न मैं स्नानादि करना ही जानता हूँ। मुझे तो, तुम कृपा करके अभी, यहीं उपदेश कर दो। घरतक जानेकी देर मुझसे सही नहीं जाती।'

प्रेममें नियमोंका बन्धन टूट जाता है, सच्चे आतुरकी अभिलाषा पूरी होनेमें कोई प्रतिबन्धक नहीं रह सकता। संतका हृदय उसकी प्रेमातुरताको देखकर द्रवित हो गया, उन्होंने कहा—

'भाई! मैं तुझको यहीं उपदेश करूँगा, परन्तु दीक्षा लेनेसे पहले तुझको एक प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी, कुछ व्रत धारण करने पड़ेंगे, बता, तू मेरे कहनेके अनुसार करेगा या नहीं।' गोपालने कहा—'नाथ! मैं जरूर करूँगा, परन्तु मैं गँवार हूँ, मुझसे बहुत-सी बातें नहीं सध सकेंगी। मुझे तो बस, कोई एक ही साधन बतला दो। मैं उसे तुम्हारे आज्ञानुसार प्राण-पणसे पूरा करूँगा।'

गोपालके निष्कपट वचनोंसे महात्मा बहुत ही प्रसन्न हुए, और भगवान् गोविन्दका स्मरण करके वहीं बैठ गये। मानसिक आसन-शुद्धि आदिके पश्चात् उन्होंने कमण्डलुमेंसे जल लेकर गोपालके शरीरपर उसके छींटे दिये, तदनन्तर उसे मन्त्र दे दिया और बोले कि 'वत्स! अबसे तुझे जो कुछ भी खाना हो सो पहले श्रीगोविन्दभगवान्के निवेदन करके पीछे खाना। बस, इसी एक साधनसे तुझपर भगवान्की कृपा हो जायगी।' गुरुदेवके वचन सुनकर गोपालने हर्षभरे हृदयसे दण्डवत् प्रणाम करते हुए कहा—'बापजी! मैं जरूर ऐसा ही करूँगा; पर मुझे तुमसे एक बात पूछनी है, तुमने जो गोविन्दभगवान्के भोग लगाकर खानेको कहा सो वह भगवान् कैसे हैं, कहाँ रहते हैं और उनका दर्शन किस तरह हो सकेगा, यह बात मुझे और बतला दो।' संतने कहा—

'वत्स! वह महाप्रभु घट-घटमें रम रहे हैं, यह सारा विश्व उनसे भरा है। अतएव तू उन्हें सच्चे मनसे जहाँ चाहेगा, वहीं दर्शन देंगे।

उन भगवान् श्रीकृष्णका रूप बड़ा ही मनोहर है, उनके शरीरका सुन्दर साँवला रंग है, दोनों नेत्र प्रफुल्लित कमलसदृश कमनीय हैं, शरत्पूर्णिमाके पूर्ण चन्द्रकी भाँति उनके मुखमण्डलसे अमृतकी अनवरत वर्षा हो रही है। अहा ! एक बार उनके दर्शन होते ही सारे दुःख दूर हो जाते हैं। उनके लाल-लाल बिम्बाफल-से होठ हैं, मुखपर मधुर मुरली विराज रही है, भगवान्ने पवित्र पीताम्बर धारण कर रक्खा है, कटिमें मनोहर मेखला और चरणोंमें नूपुर शोभा पा रहे हैं। जो एक बार उनकी रूप-माधुरी देख लेता है, वह फिर उन्हींका हो जाता है, उसके तन, मन, धन अपने-आप ही उनके चरण-कमलोंमें समर्पित हो जाते हैं। फिर उसे न तो दूसरी चर्चा सुहाती है और न कोई दृश्य ही मन भाता है। तू कहीं भी क्यों न रहे, मन्त्रका जप करते हुए उनके इस रूपका ध्यानकर उनको पुकार लेना। ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ वह नहीं हों। बस, खाद्य पदार्थ उनके भोग लगाकर, फिर प्रसाद लेना। देख ! ऐसा करनेमें कभी भूलना नहीं ! ईश्वर-कृपासे तेरा इसीसे कल्याण हो जायगा।'

इतना कहकर गोपालका दूध ग्रहण करके महात्मा वहाँसे विदा हुए, गोपालने भी आनन्दसे उनके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम करके अपनी गोशालाका रास्ता लिया।

गोपालकी घरवाली तथा उसके पुत्रोंको इस बातका कुछ भी पता नहीं है। स्त्री छाक लेकर आयी और सदाकी तरह गोपालके पास रखकर चली गयी। पर गोपाल आज कुछ दूसरे ही विचारोंमें तल्लीन है, उसका चित्त केवल प्रभुके ही चिन्तन और ध्यानमें लगा हुआ है। वह

मन-ही-मन विचार करने लगा कि 'गुरुदेव कह गये हैं कि भगवान् श्रीहरि घट-घटमें विराज रहे हैं, सभी समय, सभी स्थानोंमें हैं, फिर मुझे क्यों नहीं दीखते ? गुरु महाराजके बताये हुए रूपका ध्यान तो करूँ, देखें दर्शन होते हैं या नहीं ।' गोपाल इस विचारमें था, इसी बीचमें उसकी स्त्री छाक रखकर चली गयी थी। थोड़ी देर बाद गोपालने देखा छाक पास रक्खी है, भोजन-सामग्री देखते ही उसे गुरुकी आज्ञाका स्मरण हो आया। गोपाल छाक उठाकर एकान्तमें ले गया। जलके छींटे देकर पत्तेपर रोटियाँ परोसीं, उनपर तुलसीदल रक्खा, फिर आँखें मूँदकर गोविन्दका ध्यान करते हुए भोजन उनके निवेदन करने लगा। उसने दोनों हाथ जोड़कर कहा—

'हे गोविन्द ! लो, लो, ये रोटियाँ रक्खी हैं, मेरे नाथ ! इनका भोग लगाओ। गुरुदेव आज्ञा दे गये हैं कि भगवान्‌के भोग लगानेपर जो प्रसादी बच रहे सो खाना, इसलिये हे प्रभो ! आओ अपने गोपालकी साग-भाजी प्रेमसे आरोगो ! तुम नहीं आओगे तो मुझे भूखों मरना पड़ेगा। प्रभु, प्रभु ! यद्यपि आज मुझे बहुत ही भूख लगी है, तथापि तुम नहीं खाओगे तो मैं भी नहीं खाऊँगा, उपवास करूँगा। दीनानाथ ! अब देर न करो, शीघ्र ही भोग लगाकर दासको कृतार्थ करो।'

देखते-देखते सन्ध्या हो गयी; परन्तु न तो गोविन्द आये और न उन्होंने भोग ही लगाया। गोपालको इससे बड़ा दु:ख हुआ, उसने कुछ भी नहीं खाया और रोटियोंको जङ्गलमें फेंककर वह अपनी गोशाला-में आ गया। उसने रातको भी कुछ नहीं खाया। दूसरे दिन दुपहरको घरसे स्त्री आकर सदाकी तरह छाक रख गयी। इस दिन भी उसने

एकान्तमें बैठकर गोविन्दको बुलानेकी चेष्टा की, परन्तु पहले दिनकी तरह न तो गोविन्द आये और न भोजन ही किया। गोपालको बड़ी भूख लगी थी, परन्तु उस श्रद्धालु सरल चरवाहेने अपने मनमें यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि गुरुके आज्ञानुसार भगवान्‌को भोग लगाये बिना रोटी नहीं खाऊँगा। आज भी गोपाल रोटियाँ जङ्गलमें फेंककर उपवासी रहा। दिन-पर-दिन बीतने लगे। आजकलका-सा जमाना होता तो ईश्वर और गुरु दोनोंपर कभीकी अश्रद्धा हो गयी होती और ऐसे भक्तिभावका बहिष्कार किया जाने लगा होता। परन्तु उस समय न तो आजकलकी भाँति अहम्मन्यतापूर्ण बुद्धिवादका ही युग था और न उस ग्रामीण चरवाहेके हृदयमें कुतर्कको ही जगह मिली थी। भूखके मारे प्राण छटपटाते थे। परन्तु वह अपने व्रतपर प्रसन्नतासे अटल था।

इस तरह लगातार अठारह दिन बीत गये। न तो गोविन्द आते हैं और न भोजन करते हैं। इसलिये गोपाल भी भूखा रहता है। अठारह दिनोंमें उसका शरीर दिन-दिन क्षीण होते-होते सूख गया, पेट अंदर घुस गया, आँखोंमें गड़हे पड़ गये, खड़े होनेमें चक्कर आने लगे। पतिकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई दुर्बलताको देखकर पत्नी उससे कारण पूछती, परन्तु वह कोई जवाब नहीं देता, वह बेचारी छाक रखकर चली जाती और उसके जानेपर गोपाल भी भगवान्‌को भोग लगानेके लिये एकान्तमें जाता; परन्तु बेचारेको रोज-रोज निराश होकर लौटना पड़ता। इतना होनेपर भी गोपाल अपने व्रतपर सुदृढ़ था, वह प्रतिदिन यह विचारता कि, 'अहा ! इस संसारमें आकर आगे-पीछे एक दिन मरना तो है ही, फिर गुरु महाराजकी आज्ञाका उल्लङ्घन क्यों करूँ ! गुरु महाराजकी

आज्ञा निश्चय ही सत्य है, यहाँ नहीं तो, मरनेके बाद गोलोकमें तो भगवान्‌के दर्शन अवश्य ही होंगे। जो कुछ भी हो, गुरुदेवकी आज्ञा कभी टालनेका नहीं हूँ।' धन्य श्रद्धा !

अहा! आज गोपालके उपवासका सत्ताईसवाँ दिन है, अब उसमें चलने-फिरनेकी शक्ति भी नहीं रह गयी है, उसकी आँखें बिल्कुल सफेद हो गयी हैं। मालूम होता है आज ही उसे इस मर्त्यलोकसे प्रयाण करना है। समय होते ही गोपालकी स्त्री छाक लेकर आयी। पतिकी दशा देखकर उसको बहुत ही दुःख हुआ, उसने पूछा—'स्वामी ! तुमको क्या हो गया ?' परन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। उसने कहा—'आज मैं घर नहीं जाकर यहीं रह जाती हूँ' परन्तु गोपालने उसकी यह बात किसी तरह भी नहीं मानी। शेषमें बेचारी आँसुओंकी धारासे आँचल भिगोती हुई पतिकी आज्ञा मानकर लौट गयी। पत्नीके जाते ही गोपाल धीरे-धीरे उठकर बैठा और बड़ी कठिनतासे खड़ा होकर छाक एकान्तमें ले गया। सदाकी भाँति भगवान्‌का ध्यान करके निवेदन करने लगा। आज उससे बैठा नहीं रह गया, इससे वह जमीनमें लेट-कर गोविन्दको पुकारने लगा। आज उसके रुदनका अन्त नहीं है। शरीरमें जितना जल था, अश्रुबिन्दुओंके रूपमें आँखोंसे सब निकल गया और उसके शरीरमें—मनमें जितना बल था वह सारा-का-सारा बाहर निकलकर प्रार्थनामें लग गया। गोपालके मनमें इस बातका निश्चय हो चुका था कि आजकी यह प्रार्थना, अन्तिम प्रार्थना है। इस तरह प्रार्थना करता हुआ वह बारम्बार प्रणाम करने लगा। आज श्रीहरिके दर्शनके लिये उसके मनमें अभूतपूर्व उत्कण्ठा और व्याकुलता थी। आज गोपाल-

की पुकार उसके अन्तस्तलकी पूरी गहराईसे थी। अब भगवान् श्रीहरि कैसे छिपे रह सकते थे ? तुरंत ही गोपालके सामने प्रकट हो गये।

भगवान्का वही सुन्दर स्वरूप था, जैसा गुरुदेवने वर्णन किया था। भगवान्ने पावन पीताम्बर धारण कर रक्खा है, मुखमण्डलकी मनोहरता कोटि-कोटि मूर्तिमान् सौन्दर्यको लजा रही है, कर-कमलोंमें भाग्यशालिनी मुरली शोभित हो रही है। श्रीहरिकी विश्व-विमोहिनी छविको देखकर गोपाल मुग्ध हो गया, आज गोपालके आनन्दका पार नहीं है। अकस्मात् उसके शिथिल अंगोंमें जागृति आ गयी। शरीरमें एक नवीन चैतन्यताका सञ्चार हो गया। चकित होकर उसने एक बार आँखें मूँद लीं, परन्तु ध्यानमें भी उसे वही रूप दिखलायी दिया जो खुली आँखोंके सामने था। उसने तुरंत आँखें खोल लीं, बाहर-भीतर दोनों जगह भगवान्की रूप-माधुरीके दर्शनकर उसके हृदयमें आनन्दका अथाह समुद्र उमड़ पड़ा, उसकी आँखोंसे आँसुओंकी अजस्र धारा बहने लगी। वह प्रभुके चरणोंमें चिपट गया। उसका शरीर पुलकित हो गया, गला रुक गया, जबान बंद हो गयी। प्रेमाश्रुओंसे भगवान्के चरण धुल गये। भक्त-भावन भगवान्ने भोले भक्तको उठाकर गोदमें ले लिया और अपने सुर-मुनि-वाञ्छित करकमलसे उसके आँसू पोंछते हुए प्रफुल्ल मुख-कमलसे अमृत बरसाते हुए कहा—

'मेरे प्यारे गोपाल ! तू रो मत। देख मैं तेरे प्रेमके लिये तेरी निवेदन की हुई रोटियाँ खाता हूँ। मुझे ऐसा ही अन्न चाहिये। मैं इसी प्रकारका—हृदयके सच्चे भावसे प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ अन्न खाया करता हूँ। वत्स ! मैं भोजनका भूखा नहीं, तुझ-सरीखे प्रेमियोंके

भगवान्‌ने भोले भक्तको उठाकर गोदमें ले लिया !
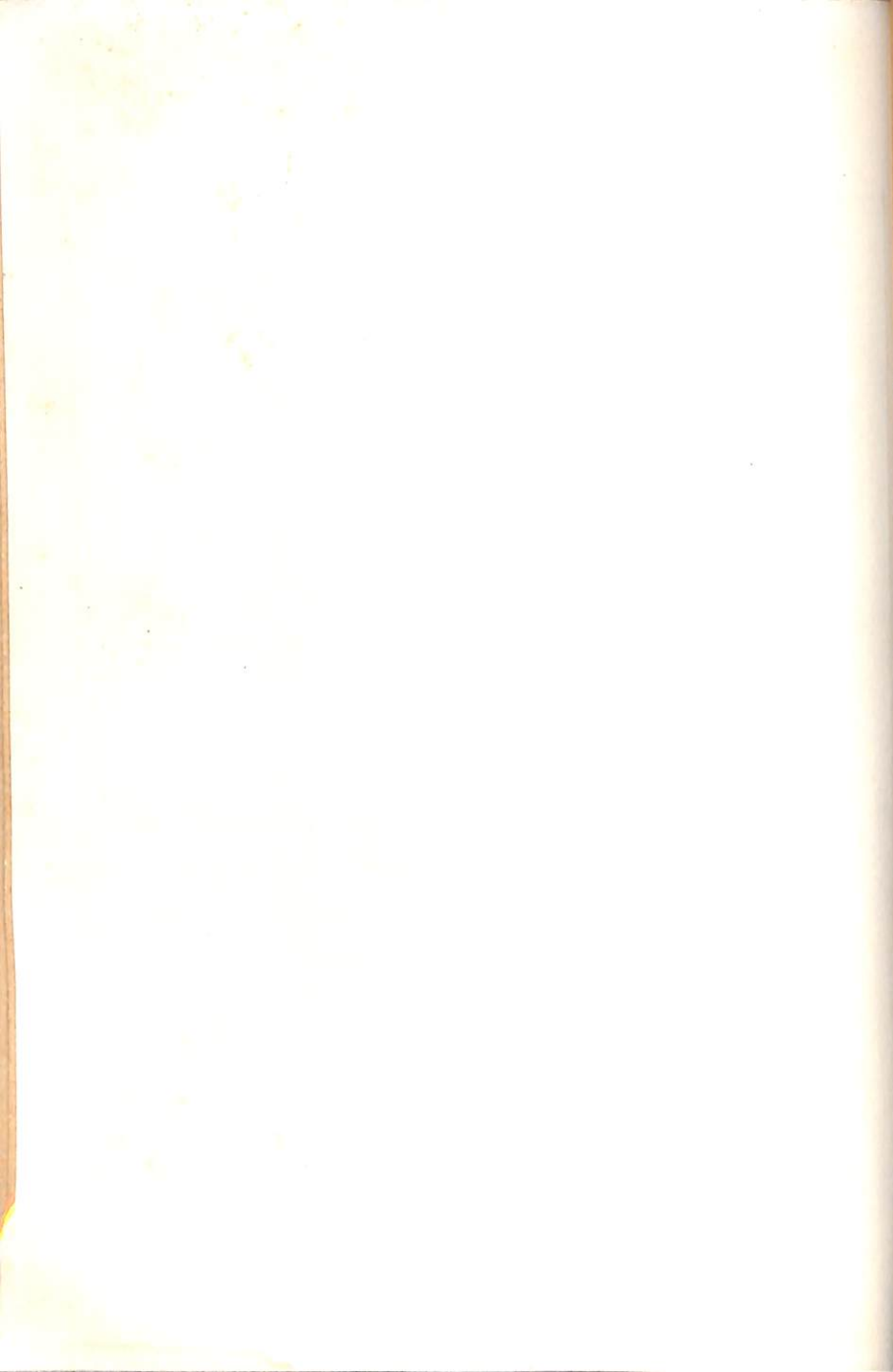
भावका भूखा हूँ। अब तू घर जा और अपने स्त्री, पुत्र तथा बन्धु-बान्धवोंको सुखी कर, अब तुझे कोई चिन्ता नहीं है, मेरे भजन-ध्यानमें आयु बिताकर देहान्तके बाद सुखपूर्वक गोलोकमें निवास करना।'

श्रीभगवान् इतना कहकर हँसते-हँसते अन्तर्धान हो गये। गोपाल-के मनमें बहुत कुछ कहनेका विचार था। परन्तु उसकी जीभ रुक गयी थी। वह अबतक जिस मधुर मूर्तिकी ओर ताक रहा था, वह मूर्ति अकस्मात् जिस दिशाकी ओर अन्तर्धान हुई, वह हक्का-बक्का-सा होकर उसी ओर ताकने लगा। उसकी दशा मणिहीन सर्पकी-सी हो गयी, वह विरह-वेदनासे व्याकुल होकर रो पड़ा। भगवान्के वियोगसे उसे बहुत ही क्लेश हुआ। शेषमें कुछ धैर्य धारण करके उसने उठकर भगवान्का भुक्तावशेष महाप्रसाद ग्रहण किया। उसने ज्यों ही महा-प्रसाद खाना आरम्भ किया, त्यों ही उसके अंदर आनन्द और शान्ति बढ़ने लगी। वह महाप्रसाद खाते-खाते गुरु गोविन्दके गुण-गान करने लगा। उसके मुखसे केवल "जय गोविन्द, जय गुरुदेव, जय गोविन्द जय गोविन्द" की ध्वनि होने लगी।

भोजन पूरा हुआ। सत्ताईस दिनोंकी ही नहीं, जन्म-जन्मान्तर-की अनन्त क्षुधा-पिपासा सदाके लिये शान्त हो गयी। हरिनामका आश्रय, गुरु-कृपा और गुरु-वाक्यमें ऐकान्तिक श्रद्धा रखनेसे गोपाल परम कृपालु भक्तवत्सल भगवान्के दुर्लभ दर्शन प्राप्तकर कृतार्थ हो गया।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय !

भक्त शान्तोबा और उसकी धर्मपत्नी

मुगलोंके शासनकालमें दक्षिणके 'रञ्जनम्' गाँवमें शान्तोबा नामक एक धनवान् व्यक्ति रहता था। शान्तोबाके सांसारिक सुखोंकी कोई कमी नहीं थी। मान-सम्मान भी यथेष्ट था। वह चौबीसों घंटे मौज-शौकमें फँसा रहता और उसीमें आनन्द मानता। सच्चे आनन्दका उसे स्वप्नमें भी ध्यान नहीं था। भगवान्‌की लीला विचित्र है। वे चाहें तो पलभरमें राईको पहाड़ और महामूर्खको परम ज्ञानी बना सकते हैं। उनकी कृपादृष्टि होते ही मनुष्यके जीवनमें अद्भुत परिवर्तन हो जाता है, उसी क्षण वह सन्मार्गपर आकर भगवत्प्राप्तिका अधिकारी बन जाता है। पूर्व पुण्य और भगवत्कृपासे शान्तोबाके लिये भी ऐसा ही हुआ। एक महान् संतके सङ्गसे उसका भाग्य-चक्र अकस्मात् घूम गया। एक दिन भक्तप्रवर तुकारामजी उसके घर जा पहुँचे। सच्चे साधुका सङ्ग अमोघ हुआ करता है। तुकारामजीके खरे उपदेशोंने शान्तोबाके हृदयपर जादूका काम किया, उसका भ्रम दूर हो गया। उसे इस साधु-सङ्गसे अपूर्व आनन्दकी प्राप्ति हुई। इस आनन्दके सामने उसको संसारके समग्र सुख-भोग अति तुच्छ प्रतीत होने लगे। शान्तोबाकी आँखोंसे आनन्दके आँसुओंकी धारा बह चली, उसे नवीन नेत्र प्राप्त हो गये। नूतन नेत्रोंसे संसारके कण-कणमें उसको नवीनता दीखने लगी। यहीं शान्तोबाके जीवनका नव-प्रभात आरम्भ हुआ!

आज शान्तोबाका जीवन पलट गया, उसे सब कुछ उलटा दिखायी

देने लगा। पहले जो अमृत-सा लगता था, वही अब विषवत् लगने लगा। पहले जिन भोगोंको वह 'मेरा' 'मेरा' कहता, अब उनकी ओर ताकना भी कठिन हो गया। उसकी हृत्तन्त्री एक स्वतन्त्र ही राग अलापने लगी और उस रागके मधुर स्वरोंने मेघ-मल्लारकी भाँति शान्तोबाके अहङ्काररूपी दीपक-रागको सर्वथा शान्त-शीतल कर डाला।

शान्तोबाके सभी विचार बदल गये। आजतक तो उसके मनमें केवल इन्द्रियोंकी तृप्तिके और कामिनी-काञ्चनके विचार ही उठा करते थे, अब उनके बदलेमें यह विचार उठने लगे कि 'हाय! मैंने तुच्छ विषय-सुखके लिये मनुष्य-जीवनका अमूल्य समय व्यर्थ खो दिया। अब मेरी क्या गति होगी? श्रीहरिके चरण-कमलोंकी प्राप्ति मुझे कैसे होगी? मेरा जीवन पूरा होनेको आया, कुछ ही कालमें यमदूत मुझे यमराजके पास ले जायँगे, तब मैं क्या जवाब दूँगा? हे प्रभो! दीनदयालो! अब मैं क्या करूँ?'

ऐसे सच्चे विचार मनुष्यके हृदयमें उत्पन्न होते ही भगवान् उसके अधिकार और योग्यतानुसार उसको मार्ग बतला देते हैं। लक्ष्यस्थान एक होनेपर भी अधिकारी-भेदसे मार्ग भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। शान्तोबा-को भी व्याकुलतापूर्ण प्रार्थनाके अन्तमें एक मार्ग सूझ पड़ा। अन्तर्यामी-की प्रेरणासे उसने अपनी आसक्तिकी सारी वस्तुओंको, घर-परिवार, धन-ऐश्वर्य सबको त्याग दिया। अपनी अटूट सम्पत्तिका बहुत-सा भाग गरीबोंको बाँटकर उच्च स्वरसे हरिनामकी ध्वनि करता हुआ शान्तोबा घरसे निकल पड़ा। इस समय एक लंगोटीके सिवा शान्तोबाके पास 'मेरी' कहलानेवाली कोई भी वस्तु नहीं रही। लोक-लज्जाका भय न होता तो यह लंगोटी भी नहीं रहती। शान्तोबा चलते-चलते भीमा

नदीके तटपर जा पहुँचा। नदीकी भयानक तरङ्गोंको देखकर शान्तोबाके मनमें कुछ भी भय नहीं हुआ। होता भी कैसे? जो इस अपार संसार-सागरके परले पार पहुँचनेके लिये अनन्तके मार्गका निर्भीक यात्री बन जाता है, वह एक सामान्य नदीसे क्यों डरने लगा? शान्तोबा कुछ भी विचार न कर प्रेमावेशमें नदीमें कूद पड़ा और भगवत्कृपासे देखते-ही-देखते उस पार जा पहुँचा। नदीके तीरपर एक पर्वत था, शान्तोबा कुछ भी न घबड़ाकर उसपर चढ़ गया। पर्वतकी शान्तिमयी नैसर्गिक शोभा देखकर उसे बड़ा आनन्द हुआ। कोलाहलपूर्ण नगरोंमें ऐसा सुन्दर प्राकृतिक पवित्र एकान्त स्थान कहाँसे मिल सकता है? पर्वत-शिखरकी मधुरतामयी निस्तब्धता, झरनोंका सुस्वादु जल, रङ्ग-विरङ्गे पक्षियोंका मधुर कूजन देख-सुनकर शान्तोबाका मन मुग्ध हो गया। उसने निश्चय कर लिया कि अब यहाँ पर्वत-गुफाओंमें रहकर ही मैं सर्वगुहाविहारी हरिकी आराधना करूँगा।

शान्तोबा पिंजड़ेसे छूटे हुए पक्षीके सदृश या कमल-कोषमेंसे निकले हुए भ्रमरकी भाँति उस मुक्तक्षेत्रमें स्वतन्त्रतासे रहने लगा। यहाँ उसके आनन्दका पार नहीं है। पक्षियोंकी बोली सुनकर वह भी 'हरि हरि' पुकारने लगता है। मोरके नाचको देखकर नाच उठता है! झरनोंके सङ्गीतमें स्वर मिलाकर हरि-गुण गाता हुआ तनकी सुध-बुध भूल जाता है। किसी भी पशु-पक्षीका गान सुनकर अस्फुट स्वरसे उसका अनुकरण करने लगता है, जिससे उसकी माधुरी बढ़ जाती है। उसके कण्ठसे निकली हुई सुधा-सङ्गीत-लहरीसे समस्त वन-भूमि लहरा उठती है। शान्तोबाके मन-मुग्धकारी गानके प्रभावसे हिंसक-अहिंसक सभी प्राणी उसकी ओर आकर्षित हो गये। वृक्ष-लता और

तारागण भी मानो उसके प्रेमसे डगमगाने लगे। शान्तोबाके सहवाससे समग्र वन-भूमि पुष्प-फलसम्पन्न होकर परम शोभा पाने लगी।

(२)

रुचिविचित्रताके अनुसार संसारमें जो वस्तु एकको अच्छी लगती है, वही दूसरेको बुरी प्रतीत होती है। शान्तोबाके लिये वनगमन जहाँ अत्यन्त शान्तिप्रद था, वहाँ उसके घरवालोंके लिये वही अशान्तिका कारण बना हुआ था। घरवालोंने निश्चय किया कि शान्तोबाकी पत्नीको वनमें पतिके पास भेजा जाय। उन्होंने सोचा कि अनुपम रूप-लावण्यवती पत्नीको देखते ही शान्तोबा मोहित होकर घर लौट आवेगा। शान्तोबा-की पतिव्रता पत्नी तो किसी भी बहाने पतिके चरण-दर्शन करना चाहती ही थी। सासकी आज्ञा लेकर एक विश्वासी आदमीको साथ ले वह पतिको लौटानेके लिये चली। आज उस पतिव्रताको बड़ा आनन्द हो रहा है, वह मन-ही-मन सोचती है—'आवेंगे तो जरूर लौटा लाऊँगी, नहीं आवेंगे तो भी मुझे दर्शनका लाभ तो होगा ही! मुझे त्याग करनेमें ही उनको सुख होगा तो मैं भी उसीमें अपनेको सुखी समझूँगी। उनके सुखमें विघ्न नहीं डालूँगी। मेरे लिये तो उनके दर्शनसे ही परम लाभ है।' यों विचार करते-करते वह शान्तोबाके समीप जा पहुँची। लजवन्ती लताकी भाँति सिर झुकाये वह पतिके पास खड़ी रही, मनमें बहुत-सी बातें आयीं परन्तु कण्ठ रुक गया, जिससे एक शब्द भी उसके मुखसे नहीं निकला।

शान्तोबाने अनुपम सुन्दरी प्रियतमा पत्नीको अपने पास खड़ी हुई देखा, पर उसका चित्त तनिक भी चलायमान नहीं हुआ, उसके मनमें किञ्चित् भी विकार नहीं उत्पन्न हुआ। वह ज्यों-का-त्यों अटल-अचल

बैठा रहा। यों कितना ही समय बीत गया परन्तु दोनोंमेंसे किसीके मुखसे एक शब्द भी नहीं निकला। पतिव्रता भी गहरे विचारमें पड़ी हुई थी। वह अपने आने और घरवालोंके भेजनेका उद्देश्य भूल गयी, शान्तोबाको अपनी रूप-माधुरीमें फँसाकर ले जानेके बदले स्वयं ही फँस गयी। थोड़ी देर बाद वह धीरेसे पतिके चरणोंमें गिर पड़ी और अपने दोनों हाथोंसे दोनों चरणोंको पकड़कर उनको आँसुओंकी पवित्र धारासे पखारती हुई बोली—'नाथ! आप अपने भगवान्‌की आराधना करनेके लिये हम लोगोंको छोड़कर यहाँ चले आये, यह तो ठीक है, परन्तु देव! मेरे लिये तो आपको छोड़कर दूसरा कोई भगवान् नहीं है। मेरे तो आप ही प्रभु हैं, आप ही प्रत्यक्ष भगवान् हैं। आपको छोड़कर मैं और किसकी सेवा करूँ? आज यह दासी आपके चरण-कमलोंकी सेवा करनेके लिये यहाँ आयी है, क्या आप इसे आश्रय देकर इसकी सेवा स्वीकार नहीं करेंगे?' इतना कहते-कहते उसका गला भर आया, जिससे एक भी शब्द उसके मुखसे नहीं निकल सका। वह उसी तरह पतिके पद-प्रान्तमें पड़ी रही। अब शान्तोबाकी जबान खुली—कामकी प्रेरणासे नहीं, कर्तव्यकी प्रेरणासे। शान्तोबाने आन्तरिक दृढ़ताके साथ कहा—'अच्छी बात है, तुम मेरे पास रहो, परन्तु यहाँ तुम्हें मेरी ही तरह रहना होगा, बहुमूल्य गहने-कपड़े उतारकर मेरी भाँति सादे कपड़े पहनकर ही यहाँ रह सकोगी, नहीं तो तुम अपनी राह जा सकती हो, मैं तुम्हें बिल्कुल नहीं रोकना चाहता।' सतीने पतिके वचन सुनते ही उसी क्षण गहने-कपड़े उतारकर फेंक दिये और तपस्विनीके वेषमें पतिकी सेवामें अपनेको नियुक्त कर दिया। पतिव्रता सतीके लिये पतिसे बढ़कर अमूल्य आभूषण और क्या होगा? तपस्वी

पतिने कृपापूर्वक अपने पास रहनेकी आज्ञा दे दी। इससे बढ़कर सौभाग्य उसके लिये और क्या हो सकता था? आज इस कठोर पर्वत-प्रदेशकी निर्जन वन-भूमिमें पतिचरणोंमें स्थित पतिव्रताका अन्त:करण जिस आनन्दका अनुभव कर रहा है, वैसा आनन्द उसे अपने विलास-वैभव-से भरे हुए रमणीय सोनेके महलोंमें कभी नहीं मिला था। धन्य आर्यनारी!

(३)

पति-पत्नी दोनों सानन्द वनमें तपस्या करने लगे। पत्नीकी अवस्था कितनी उन्नत हुई है, आत्मसंयममें वह कहाँतक अग्रसर हुई है, उसमें कष्टसहनकी कितनी शक्ति आयी है, शान्तोबाके मनमें एक दिन इन बातोंकी कठोर परीक्षा करनेका विचार आया। अतएव जब दम्पति वनके फल-फूल खाकर झरनेका जल पी रहे थे, तब शान्तोबाने पत्नीसे कहा—'सती! रोटी खाये बहुत दिन हो गये, तुम गाँवसे जाकर कुछ टुकड़े माँग लाओ तो बड़ा अच्छा हो।' स्वामीकी बात पूरी होते ही सतीने कहा—'देव! आपकी आज्ञा सिर-माथेपर! अभी जाकर भीख माँग लाती हूँ।' शान्तोबाने कहा—'अच्छी बात है, जाओ, परन्तु सावधान, रोटीके टुकड़ोंके सिवा और कुछ भी न लाना।' 'जो आज्ञा' कहकर सती भीखके लिये चली। अहा! जन्मसे ही जो ऐश्वर्यकी गोदमें पली थी, अबतक जिसने अन्त:पुरके अंदर ही निवास किया था, भिक्षा कैसे माँगी जाती है, इस बातका जिसे कुछ भी अनुभव नहीं था, वही शान्तोबाकी पत्नी आज पतिकी आज्ञा पाकर पर्वतके कण्टका-कीर्ण मार्गको लाँघती हुई भीख माँगने जा रही है। आज उसके किसी अङ्गमें न तो आभरण है, न पहननेको सुन्दर वस्त्र है और न केशोंमें जरा-सा तैल ही है, परन्तु उन फटे-पुराने वस्त्रों और बिखरे हुए बालोंमें

आज उसकी शोभा अकथनीय हो रही है । पातिव्रत्यके समुज्ज्वल तेजसे उसका मुखमण्डल जगमगा रहा है । आज जो उसे देखता है, वही उसे वनदेवी समझकर प्रणाम करता है । धन्य है भारतका सती-धर्म!

गाँवमें पहुँचकर सती घर-घर भीख माँगने लगी ! यों फिरते-फिरते दैवयोगसे अपनी बड़ी ननदके घर जा पहुँची । भाभीको भिखारिणीके वेषमें देखकर ननदको बड़ा ही दुःख हुआ, उसकी आँखोंमें आँसू भर आये । बड़ी कठिनतासे आँसुओंको रोककर उसने कहा—'भाभी! तुम्हारी यह क्या दशा देख रही हूँ ? क्या मेरे बाप-दादेकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो गयी ?' ननदके वचन सुनकर सतीने पतिदेवके वैराग्य और गृह-त्याग आदिका सारा विवरण संक्षेपमें सुनाकर कहा—'बहिन! तुम्हारे भाईको भूखा छोड़कर मैं यहाँ आयी हूँ, मुझे रोको मत, रोटी-का एक टुकड़ा दे सको तो जल्दी दे दो, नहीं तो मैं दूसरे घर जाती हूँ ।' सती इतना कहकर चलने लगी । 'नहीं-नहीं ! ठहर, तुझे मेरी सौगन्द है, ठहर-ठहर' ! कहकर ननद घरमें गयी और एक बड़े थालमें हलुवा, पूरी, तरकारी आदि भर लायी । सतीने इन सब चीजोंको लेनेसे इन्कार कर दिया, परन्तु ननद किसी प्रकार भी नहीं मानती थी । इसी विवादमें बहुत-सा समय बीत गया । 'स्वामी अभी भूखे बैठे हैं' सतीके मनमें यह विचार बारम्बार उठ रहा था, इसलिये अधिक समय विवादमें बिताना उचित न समझकर वह ननदके हाथसे थाल लेकर चल दी । वह यथासाध्य बड़े जोरसे चल रही थी, परन्तु रास्ता बड़ा विकट होनेके कारण उससे बहुत जल्दी चला नहीं जाता था । कभी दौड़ती, कभी धीरे-धीरे चलती, कभी ठोकर खाकर गिर पड़ती, फिर उठकर जोरसे चलने लगती । इस प्रकार अनेक कष्ट सहकर वह

शान्तोबाके पास पहुँची और पतिके पास थाल रखकर उसकी आज्ञाकी बाट देखती हुई वहीं खड़ी रही।

शान्तोबाने शान्त नेत्रोंसे थाल तो देख लिया परन्तु उसी क्षण शान्त भावको दबाकर तीक्ष्ण दृष्टिसे सतीकी ओर देखते हुए उसने कहा—'ऐसा भोजन लानेके लिये तो मैंने तुमसे नहीं कहा था, मैंने कहा था लानेको रोटीके टुकड़े और तुम लायी हो हलुवा-पूरी। जाओ, यह जहाँसे लायी हो वहीं वापस ले जाओ और ला सको तो घर-घर भटककर कुछ रोटीके टुकड़े माँग लाओ।' पतिकी कोपवाणी सुनकर सतीने गाँवकी सारी बातें सुनाकर कहा—'आपकी बहिनके अत्यन्त आग्रहसे ही मुझे बाध्य होकर ये चीजें लानी पड़ी हैं, आपकी आज्ञा नहीं थी और मेरी इच्छा भी नहीं थी परन्तु आपकी बहिनके सामने मेरी एक भी नहीं चली, इससे लानी पड़ी हैं, अब आप जैसा उचित समझें वैसा ही करें।' पत्नीके ये वचन सुनकर भी शान्तोबाने हलुवा-पूरी खानेसे इन्कार कर दिया।

(४)

शान्तोबा मनमें समझता था कि यह पत्नीकी बड़ी कठिन परीक्षा हो रही है परन्तु उसने इसमें पत्नीका हित सोचा। ईश्वरपर जिनकी दृढ़ भक्ति है वह ईश्वरकी आज्ञाका पालन करनेमें कौन-सी बात उठा रखते हैं ? पर्वतपर चढ़ने-उतरने और मार्गके अनेक कष्टोंसे सतीका शरीर थककर मृतक-सा हो गया है, शरीर थर-थर काँप रहा है और श्वास भरा जा रहा है। ऐसी स्थितिमें भी पतिदेवकी आज्ञा पाते ही क्षणभरका भी विलम्ब न कर सती हलुवे-पूरीके थालको लेकर उन्हीं पैरों गाँवकी ओर चल पड़ी ! वह सती थी, पतिको ही परमेश्वर मानती

थी। मन, वाणी, कर्मसे पतिकी प्रीति सम्पादन करना ही उसके जीवनका व्रत था*।

सतीने गाँवमें आकर स्वामीकी आज्ञाका पालन किया। मीठे शब्दोंमें ननदको समझाकर थाल वापस कर दिया और कई घरोंमें घूमकर रोटीके कुछ टुकड़े माँग लिये। अब वह जल्दी-जल्दी पर्वतकी ओर चली। आज सतीकी पूरी परीक्षाका दिन था, थोड़ी ही दूर गयी थी कि घन-घोर घटा छा गयी और मूसलधार वृष्टि होने लगी। चारों ओर इतना अन्धकार छा गया कि हाथको हाथ सूझनातक बंद हो गया। ऐसी अवस्थामें राह चलना बहुत ही कठिन था। परन्तु सती अपने फटे कपड़ेके एक पल्लेसे रोटीको ढककर धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। आज वह रोटीके टुकड़े सतीके अङ्गसे भी महँगे हो रहे हैं, क्योंकि उन्हींसे पतिदेव प्रसन्न होनेवाले हैं। पतिव्रता जाड़ेसे काँपती हुई किसी प्रकार ज्यों-त्यों करके नदीके किनारेतक पहुँची, परन्तु अब आगे बढ़नेमें बड़ी कठिनाई है। वर्षाके कारण नदीमें बाढ़ आ गयी है। नदीमें न तो कोई नाव दिखायी पड़ती है और न किसी मनुष्यका ही मुँह दीखता है जिसकी सहायतासे वह उस पार जा सके। पतिव्रताकी चिन्ता-नदीने भीमा-नदीकी भीषण मूर्तिसे भी भयानक रूप धारण कर लिया। बाहर भीमा-नदीके प्रबल प्रवाहमें उठती-पड़ती हुई

---

* इस वर्णनसे पतियोंको यह नहीं समझना चाहिये कि हम परमेश्वर हैं और स्त्री हमारी दासी है। जैसे पत्नीका धर्म होता है वैसे ही पतिका भी धर्म होता है, पतिको चाहिये कि स्त्रीको अपनी सहधर्मिणी और मित्र समझे, उसके साथ प्रेम और सम्मानका बर्ताव करे, उसे न तो कभी गुलाम समझे, न सतावे और न उसपर किसी प्रकारका अनुचित दबाव ही डाले।

उत्ताल तरङ्गोंने और अन्तरमें चिन्ता-तरङ्गिणीकी भीषण तरङ्गोंने अबला रमणीको अत्यन्त व्याकुल कर दिया। 'अब इस विषम सङ्कटसे मुझे कौन उबारेगा ? मुझ-जैसी अकेली असहाया अबलाका इस विपत्तिसे कौन उद्धार करेगा ?' मन-ही-मन यों पुकारती हुई सती रो पड़ी और लंबा श्वास खींचती हुई बोली—'हाय, हाय! कोई भी नहीं दीखता, अब क्या होगा।' भयसे उसका शरीर काँपने लगा, सर्दीसे दाँत बजने लगे, वह बहुत ही अधीर हो गयी और विचार करने लगी—'हाय, सन्ध्या होनेको आयी, मेरे स्वामी अभीतक भूखे-प्यासे बैठे होंगे, अरे, ये रोटीके टुकड़े कैसे उनके पास पहुँचाऊँ ? हे पाण्डव-सखा पाण्डुरङ्ग भगवन्! हे प्रभो! एक बार कृपा कर। हे दयालो! हे कृपासिन्धो! तुम कहाँ हो ? इस दासीकी सुधि क्यों नहीं लेते ?'

भक्तकी करुण पुकार सुनते ही भगवान्‌का आसन डोल जाता है। सतीका करुण क्रन्दन सुनते ही भगवान् उसकी रक्षाके लिये एक सामान्य केवटका रूप धरकर उसके समीप आ पहुँचे और गम्भीर स्वरसे पूछने लगे—'बहिन! इस मूसलधार वर्षामें तू अकेली घरसे बाहर किसलिये निकली है ? अहा! भीगते-भीगते तेरा शरीर फीका पड़ गया है, इतना कष्ट उठाकर तू कहाँ जाना चाहती है ?'

सती इसके उत्तरमें एक शब्द भी नहीं बोल सकी, वह आँखें मूँदे हुए भगवान् पाण्डुरङ्ग श्रीहरिका ध्यान कर रही थी। इस कर्ण-रसायन कण्ठस्वरको सुनकर उसने धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलीं। देखती है कि उसके पास एक नाविक खड़ा है। तदनन्तर सतीने अपनी सारी कहानी सुनाकर शेषमें कृपाभिक्षा माँगते हुए केवटसे कहा—'भाई! देख, भगवान् पाण्डुरङ्गने तुझको यहाँ भेजा है, अब तू ही मुझपर दया न

करेगा तो और कौन करेगा ? भाई ! तेरी दया बिना मैं इस भीषण भीमा-नदीके उस पार कैसे पहुँच सकती हूँ ? अब पिता या बड़े भाईकी भाँति मेरी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखे बिना तेरा छुटकारा नहीं है। हे भाई ! चाहे जैसे भी हो, तू मुझे उस पार अभी पहुँचा दे। हाय ! मेरे पतिदेव भूखे, प्यासे पहाड़पर बैठे मेरी बाट देखते होंगे, मैं नहीं पहुँचूँगी तो आज उनको उपवास करना पड़ेगा।'

यों कहते-कहते सतीका कण्ठ रुक गया, वह पत्थरकी-सी मूर्ति बनकर केवटकी ओर कातर दृष्टिसे देखती हुई खड़ी रही। अब उस मायासे तारनेवाले चतुरचूडामणि केवटके नयनाभिराम नेत्रोंमें कृपाकी रेखाएँ स्पष्ट दिखायी देने लगीं। उसने स्नेहसे पाली हुई अपनी कन्याकी भाँति सतीको अपने कन्धेपर बैठाकर बात-की-बातमें उस पार पहुँचा दिया और ठीक उसके पतिकी पर्णकुटीके सामने उसको छोड़कर वह तुरंत ही अदृश्य हो गया। कृतज्ञता, उपकार या धन्यवादके एक-दो शब्द सुननेके लिये भी क्षणभर खड़ा नहीं रहा। धन्य भक्तवत्सलता !

इस समय सती अपने तनकी सुधि भूली हुई है। सतीने क्या किया था ? ज्यों-ज्यों बरसात जोरसे पड़ती थी त्यों-ही-त्यों वह अपनी साड़ी खींच-खींचकर पतिके लिये माँगकर लाये हुए रोटीके टुकड़ोंको ढकती जाती थी। यों करते-करते उसने अपनी सारी साड़ी रोटियोंपर लपेट दी थी, इस समय उसके अङ्गपर कोई वस्त्र नहीं था, परन्तु उसे इस बातका बिल्कुल ज्ञान नहीं है। पतिकी कुटियाके पास पहुँचकर ज्यों ही उसने पतिके पास रोटीके टुकड़े रखनेके लिये साड़ीका पल्ला खींचा, त्यों ही उसे होश हुआ। वह मन-ही-मन बड़ा क्षोभ करने लगी कि 'हाय ! केवटने मेरे लिये क्या समझा होगा ?' इस विचारसे

भक्त शान्तोबा और उसकी पतिव्रता धर्मपत्नी

वह लज्जासे भर गयी और रोटीपरसे साड़ी उतारकर पहन ली। तदनन्तर प्रसन्न-चित्तसे पतिके पास जाकर उसके चरणोंमें प्रणाम किया!

जिन रोटीके टुकड़ोंके लिये पतिव्रताने इतनी विपद् सही, वे आखिर शान्तोबाके काम भी नहीं आये। सतीने जिन टुकड़ोंको प्राणापेक्षा अधिक प्रिय समझ कपड़ेसे ढककर वर्षामें भीगनेसे बचाया था, उनको अब आँचलसे निकालकर विनीत-भावसे पतिके सामने रख दिया। परन्तु शान्तोबाने उनकी ओर नज़र भी नहीं डाली, वह दूसरी ही धुनमें मस्त था। जबसे सती टुकड़े लेकर आयी, तभीसे वहाँ एक विलक्षण शान्ति और आनन्दकी मीठी लहर बहने लगी। सतीका रूप-लावण्य और उसकी कमनीय कान्ति ऐसी दिव्य हो गयी कि शान्तोबा भक्तिपूर्वक टकटकी लगाये आश्चर्यचकित नेत्रोंसे उसीकी ओर देखता ही रह गया। सतीकी कान्तिमें अद्भुत परिवर्तन देखकर वह चकित हो गया। अहा! जिनके मृदुल चरण-स्पर्शसे काठकी नौका सोनेकी हो गयी, जिनके चरण-रजके छूनेमात्रसे पत्थरकी शिला ऋषिपत्नी अहल्या बन गयी और जिनके कर-कमलका स्पर्श होते ही कुरूपा कुब्जा सर्वाङ्गसुन्दरी बन गयी, शान्तोबा! आज तुम्हारी भाग्यशालिनी पत्नीने भी उसी पाप-ताप-प्रभञ्जक जन-मन-मोहन प्रभुका पावन स्पर्श प्राप्त किया है। इसीसे आज सतीकी रूप-छटा कुछ दूसरी ही हो रही है और उसके प्रत्येक अङ्गसे विद्युत्-धाराकी भाँति पवित्र तेज निकल रहा है। अत्यन्त आश्चर्य-में डूबकर शान्तोबाने पूछा—'साध्वी! शीघ्र बतलाओ, ऐसे विकट कालमें तुम नदीको पार करके यहाँतक कैसे पहुँच सकी?'

पतिव्रताने कहा—'नाथ! आपके आशीर्वादसे नदी पार करनेमें मुझे तनिक-सा भी कष्ट नहीं हुआ! मुझे तो यह पता भी नहीं है कि

मैं देखते-देखते ही कैसे नदीके पार पहुँच गयी। प्रभो ! आपकी आज्ञा पाकर मैं तुरंत बहिनके यहाँ गयी और बहुत समझा-बुझाकर हलुवा-पूरी उन्हें वापस लौटाया। फिर कई घरोंमें घूमकर रोटीके कुछ टुकड़े इकट्ठे किये। एक तो आपके भूखकी याद बनी हुई थी, दूसरे बहुत दूरसे मुझे अकेली यहाँतक आनेकी चिन्ता थी, इसलिये मैं वहाँसे उन्हीं पैरों लौट आयी। थोड़ी ही दूर आयी थी कि बड़े जोरसे पानी गिरने लगा। सारा रास्ता कीचड़से ऐसा भर गया कि उसमें एक पैर चलना भी कठिन हो गया। चारों ओर अन्धकार छा गया। मैं गिरती-पड़ती किसी तरह नदीके किनारेतक पहुँची। वहाँ आकर देखती हूँ कि नदीमें भयानक बाढ़ आ रही है। न तो कोई नाव है और न कहीं किसी मनुष्य-का ही मुख दीखता है। नदीकी आकाशतक उछलती हुई भीषण तरङ्गों-को देखकर मैं काँप उठी। उस समय भीमाका स्वरूप ऐसा भयंकर प्रतीत होता था, मानो रणरङ्गिणी चण्डिका ही श्वेत फेनोंकी कपाल-माला धारणकर तरङ्गोंपर ताण्डव-नृत्य कर रही है। घोर अन्धकारके कारण दिन रहनेपर भी हाथको हाथ नहीं सूझता था। बिजलीकी कड़-कड़ाहट, श्मशानमें जलती हुई चिताकी अग्निज्वाला और उसमेंसे निकलने-वाले हृदयविदारक शब्द, मेघकी घोर गर्जना और भैरवी भीमा-नदीकी गम्भीर 'घू-घू' ध्वनिसे हृदय फटा जाता था। किसी-किसी समय तो ऐसी विकट आवाज सुनायी देती थी कि शरीरका खून सूख जाता, हृदय जोर-जोरसे धड़कने लगता, पाँव रुक जाते और आँखें आप-से-आप बंद हो जातीं। अन्तमें हारकर मैंने मन-ही-मन निर्बलके बल, पतितपावन पाण्डुरङ्ग हरिको पुकारना शुरू किया। उनकी कृपासे उसी समय अकस्मात् एक मनुष्य वहाँ आ पहुँचा, उसके आते ही मेरी बंद

आँखें तुरंत खुल गयीं। पूछनेपर पता लगा कि वह 'केवट' था। मेरी दुर्दशा देखकर उसका हृदय दयासे भर गया और उसने अपनी कन्याकी भाँति मुझे अपने कन्धेपर उठाकर नावमें चढ़ा लिया एवं इस पार नावसे उतरनेपर यहाँतक पहुँचाकर देखते-ही-देखते वह कहीं अदृश्य हो गया। अहा! उसके शब्दोंमें कितना अमृत भरा था!'

शान्तोबा ज्यों-ज्यों पत्नीकी बातें सुन रहा है त्यों-ही-त्यों उसका आश्चर्य बढ़ता जा रहा है। पत्नीके अन्तिम शब्द सुनकर उसका हृदय हिल गया और नेत्रोंसे दर-दर आँसुओंकी धारा बहने लगी। थोड़ी देर बाद गद्गद-कण्ठसे उसने सतीसे कहा—'भाग्यवती! क्या तू एक बार भी मुझे उस केवटके दर्शन नहीं करायगी? देवी! मैं उस भवसमुद्रके तारनेवाले केवटके लिये ही सब कुछ छोड़कर इस निर्जन स्थानमें बैठा हूँ।' यों कहते-कहते शान्तोबाको आवेश हो आया, आँसुओंकी धारामें बाढ़ आ गयी, वह पुकार उठा—'प्रभो! दरवाजेतक आकर भी क्या मेरे सामने आनेमें तुम्हें थकावट मालूम होने लगी? अच्छी बात है! सती! यह रोटीके टुकड़े पशु-पक्षियोंको खिला दो, जबतक वह केवट मुझे दर्शन नहीं देगा, तबतक मैं जल भी नहीं पीऊँगा। देखूँगा वह कबतक नहीं आता? अहा! सती! तुझे धन्य है, तैंने आज उस परमकृपालु प्रभुके अङ्ग-स्पर्शका अमूल्य लाभ प्राप्त कर लिया!'

सतीने पतिकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर रोटीके टुकड़े पशु-पक्षियों-को खिला दिये। शान्तोबाने अबतक कुछ भी नहीं खाया है। पतिके भोजन किये बिना सती कैसे खा सकती है? दोनों पति-पत्नी अनशन रहकर विरहपूर्ण चित्तसे प्रभुका मधुर चिन्तन करने लगे!

शान्तोबाको अनशन करते कई दिन बीत गये। गाँवमें एक वैश्य

हरिभक्त रहते थे। भगवान्‌ने स्वप्नमें उन्हें आज्ञा दी कि 'पहाड़पर मेरा भक्त शान्तोबा सपत्नीक कई दिनोंसे भूखा बैठा है। तुम किसी प्रकार उसे भोजन कराकर महान् पुण्य लूटो।' वैश्य भक्तने जगते ही भगवदाज्ञानुसार अनेक प्रकारकी मिठाइयाँ बनवायीं और उन्हें ले शान्तोबाके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया तथा हाथ जोड़कर कहा कि 'महात्मन्! दास आपके लिये भगवदाज्ञानुसार कुछ भोजन लाया है, इसे ग्रहणकर कृतार्थ कीजिये।' पूछनेपर वैश्य भक्तने स्वप्नकी सारी कथा शान्तोबाको सुना दी।

उसकी बात सुनते ही शान्तोबाकी अधीरता बढ़ गयी और वह रो-रोकर कहने लगा—'भाई! तुम कोई भी हो और तुमको किसीने भी भेजा हो, परन्तु मैं तुम्हारा भोजन तबतक कभी नहीं करूँगा, जबतक कि तुम उस भेजनेवालेको मुझे दिखला न दोगे!' वैश्यने बहुत कुछ अनुनय-विनय की, परन्तु शान्तोबा अपनी टेकपर अड़ा रहा। बेचारे वैश्यने हारकर शान्तोबाके चरणोंमें प्रणामकर घरका रास्ता लिया। भोजनकी सामग्री ज्यों-की-त्यों वहीं पड़ी रही।

वैश्य भक्तके चले जानेपर भोजनके पदार्थोंकी ओर देखकर शान्तोबा कहने लगे—'मेरे प्रभु! क्या यों ही मैं भोजन कर लूँ? जो चीजें खानेके बाद थोड़े ही देरमें मल-मूत्रके रूपमें परिणत हो जायँगी, क्या उनकी लालचमें मैं तुम्हें भूल जाऊँ? जिससे अनन्त जन्मोंकी भूख-प्यास मिट जाती है, तुम्हारे उस प्रेमामृतको छोड़कर क्या मैं इन भोग्य वस्तुओंमें आसक्त हो जाऊँ? नहीं, भगवन्! नहीं, ऐसा नहीं होगा। परन्तु मेरे मालिक! तुम कैसे निठुर हो, कैसे निर्दय हो, कितनी विनती करता हूँ, रोता हूँ, विलपता हूँ, तो भी तुम्हें दया नहीं आती! स्वामी! क्या

तुम सचमुच ऐसे दयाशून्य हो गये ? दर्शन दो नाथ ! दर्शन दो ! मेरे हृदयेश्वर ! इस दासको शीघ्र दर्शन दो। प्रभो ! मैं बार-बार तुमसे क्या कहूँ, मेरे हृदयमें जो कुछ है, जैसी कुछ व्यवस्था है, उसको तुम खूब जानते हो ! केवल एक ही बार मुझे अपनी वह माधुरी छटा दिखला दो मेरे नाथ !' इतना कहकर शान्तोबा जोर-जोरसे रोने लगा ! अन्तर्यामी प्रभुने अबकी बार पुकार सुन ली। अब भक्तकी मनोवेदना भगवान् नहीं सह सके। वे उसी समय शान्तोबाके सम्मुख प्रकट हो गये ! श्यामसुन्दरकी विश्वविमोहिनी कन्दर्प-दर्प-नाशिनी अनूप-रूप-माधुरीको देखते ही शान्तोबा हर्षोन्मत्त हो गया ! आज उसका हृदय असीम आनन्द-समुद्र बनकर मर्यादा छोड़ने लगा ! न मालूम कितने कालतक शान्तोबाने प्रभुके अनिर्वचनीय स्वरूपामृतका पान किया; फिर भी उसकी तृप्ति नहीं हुई ! जो एक बार उस बाँकी झाँकीकी तनिक-सी छाया भी देख लेता है, वही सदाके लिये मतवाला बन जाता है। उसमें ऐसा ही अनोखा जादू है। आज प्रभुकी सौन्दर्य-सुधाका पान करते-करते शान्तोबाकी कई दिनोंकी भूख-प्यास एक ही साथ मिट गयी। वह कभी चरणोंमें प्रणाम करता, कभी आवेशमें आकर नाचने लगता, कभी चरणोंमें लोट-लोटकर धूलिको अङ्गोंमें लगाता, कभी मन-ही-मन गुनगुनाता, कभी चुप होकर बैठ जाता ! कभी हँसता, कभी रोता, कभी व्याकुल-सा हो जाता और कभी हर्षसे गाने लगता। परन्तु उसे इस बातका कुछ भी पता नहीं था कि 'मैं क्या कर रहा हूँ।' दयामयकी दयासे उसकी रसना नाच उठी, परन्तु गला रुक गया, इससे वह एक शब्द भी बोल नहीं सका। बहुत चेष्टा की, मन-ही-मन अनेक प्रार्थनाएँ कीं,

परन्तु वाणी नहीं खुली ! कुछ देर बाद अस्फुट स्वरसे कुछ-कुछ बोलनेकी शक्ति आयी। हृदयमें उत्पन्न हुए भक्ति-भावकी विमल सरिताका पवित्र प्रवाह बहने लगा। शान्तोबा प्रभुके गुणगान करने लगा; महामहिमा-मयकी महिमाके गानसे वहाँकी सभी दिशाओंमें सुधा-वृष्टि होने लगी, शान्तोबाने वहाँके समस्त वायुमण्डलको अमृतमय बना दिया। भक्तके इस विशुद्ध भावको देखकर भगवान् बहुत ही प्रसन्न हुए और शान्तोबा-पर अनुग्रहपूर्ण आशीर्वादकी धारा बरसाते हुए अन्तर्धान हो गये।

इस समय शान्तोबाकी स्थिति कुछ और ही प्रकारकी हो रही थी। मानो वह किसी अनिर्वचनीय आनन्दके नशेमें पड़ा हुआ था। विश्वपिताके ध्यानमें उसकी इतनी तल्लीनता थी कि उसे अपनी और अपने आस-पासकी कुछ भी सुध-बुध नहीं थी। अबसे शान्तोबा मन, वचन और कर्मसे केवल उस विश्व-नियन्ताकी पूजामें ही लग गया। उसकी सद्गुणवती धर्मपत्नी भी शान्तोबाके सभी कार्योंमें सहायता करती हुई 'सहधर्मिणी' के पवित्र नामको सार्थक करने लगी।

संत शान्तोबा और उनकी भक्तिमती पत्नीके पवित्र हृदयमें खिले हुए भगवद्भक्तिरूप परम सुगन्धित पुष्पोंकी पावन और मधुरतम सुगन्ध देश-देशान्तरोंमें फैल गयी। शान्तोबाकी आन्तरिक शान्ति केवल उन्हींके हृदयकी सीमामें आबद्ध नहीं रही, सैकड़ों-हजारों नर-नारी उससे लाभ उठाने लगे। समय-समयपर शान्तोबा भिक्षाके लिये गृहस्थोंके यहाँ जाकर अपने सदुपदेशोंसे उनके हृदयोंमें भगवद्भावका स्रोत बहा देते। एक दिन वह भीखके लिये एक ब्राह्मणके घर पहुँचे। ब्राह्मण बाहर गया हुआ था। ब्राह्मणी घरमें थी। उसने बड़े आदर-सत्कारसे संतको

भिक्षा दी और उनसे कृपा-भिक्षा चाहते हुए विनीत-भावसे कहा—'महाराज ! मेरे स्वामी समय-समयपर बिना ही कारण मुझसे झगड़ा किया करते हैं और मेरा त्याग करके आपकी सेवामें चले जानेकी धमकी देकर मुझे सताया करते हैं। प्रभो ! अगर वे कहीं चले जायँगे तो मुझ अनाथाकी क्या गति होगी, इस विचारसे मेरे मनमें बड़ी ही वेदना हुआ करती है। मैं उनसे कुछ भी नहीं कहती, उनकी सभी आज्ञाओंको सिर चढ़ाती हूँ। तो भी न मालूम मेरा भाग्य ही कैसा है कि वे मुझपर प्रसन्न नहीं रहते। हे दयामय ! मुझे और कुछ भी नहीं चाहिये। मेरे स्वामी आजसे मुझपर कभी क्रोध न करें और उनका हृदय पवित्र हो जाय। बस, कृपा कर इतना ही आशीर्वाद मुझे दीजिये।'

ब्राह्मणीके वचन सुनकर उसे सान्त्वना देते हुए शान्तोबाने कहा कि 'माँ ! तू चिन्ता न कर, मैं तेरे दुःख दूर करनेका उपाय करूँगा। तू एक काम करना, अबकी बार जब ब्राह्मण तेरे साथ झगड़ा करके मेरे पास चले जानेकी धमकी दे, तब तू उसे खुशीसे मेरे पास चले आने देना। मेरे पास आनेपर मैं उसे उसी दिन ऐसा सीधा कर दूँगा कि फिर वह तेरे साथ लड़ना-झगड़ना बिल्कुल भूल जायगा।'

इतना कहकर शान्तोबा तो चले गये। इधर एक दिन रसोई बननेमें जरा देर हो गयी। ब्राह्मणदेवता क्रोधमें भरकर सदाकी भाँति कहने लगा कि 'बस-बस, अब मुझसे यह रोजकी जलन नहीं सही जाती। मैं तो अभी शान्तोबा महाराजके आश्रममें जाता हूँ। वहाँ जाकर शान्तिसे अपना जीवन बिताऊँगा।' आज ब्राह्मणी भी चुप नहीं

रही, उसने छनककर कहा कि—'रोज-रोज डर क्या दिखलाते हैं, जाना हो तो चले जाइये न ! मैं कब रोकती हूँ ?'

ब्राह्मण मनमाना कहना ही जानता था। स्त्रीसे सीधा जवाब सुननेका उसके लिये यह पहला ही अवसर था, अतएव पत्नीके वचन उसे बहुत ही बुरे लगे और जोशमें आकर तत्काल एक कम्बल और लोटा लेकर वह घरसे निकल पड़ा। शरीरमें बल था, मनमें जोश तो था ही, इसलिये थोड़ी ही देरमें ब्राह्मण शान्तोबाजीके आश्रममें जा पहुँचा।

दौड़ते-दौड़ते ब्राह्मणका श्वास भर गया था। दिनभरकी भूख थी, इससे उसका मुँह सूख गया और बोलनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी थी। कुछ देर विश्राम करनेके बाद शान्तोबाके चरणोंमें प्रणाम करके ब्राह्मणने कहा—'महाराज ! मेरे घरमें नित्यका कलह रहता है। घरवालीसे मेरी बिल्कुल नहीं पटती। अब मैं इस संसारसे एकदम ऊब गया हूँ और शान्ति पानेके लिये आपकी शरण आया हूँ। हे दयालो ! आप कृपापूर्वक मुझे शान्तिका मार्ग बताइये।' शान्तोबाने तुरंत ताड़ लिया कि यह ब्राह्मण उसी ब्राह्मणीका स्वामी है। तदनन्तर ब्राह्मणको सान्त्वना देते हुए शान्तोबाने मीठे शब्दोंमें कहा—'भाई ! तुम वैराग्य लेकर आये हो, यह बड़ी अच्छी बात है, परन्तु तुम्हारे यह कपड़े, कम्बल और लोटा वैरागीके कामकी चीजें नहीं हैं। पहले इन सबका त्याग कर दो और पासके झरनेसे तूँबेमें जल लाकर हाथ-पैर धोकर विश्राम करो।'

ब्राह्मणका जोश अभी उतरा नहीं था, इसलिये उसने कपड़े

कम्बल और लोटेको तुरंत फेंक दिया और उसी क्षण एक लँगोटी पहन ली। वह हाथमें तूँबा लेकर जल लानेको झरनेकी ओर चला। ब्राह्मण दिनभरका भूखा है। घरसे चलकर आश्रमतक दौड़ा आया है, इससे उसके पेटमें मारे भूखके गड़हे पड़ गये हैं, आँखें चढ़ गयी हैं, शरीर जलने लगा है। बनी रसोई छोड़कर घरसे निकलनेके समय तो उसने सोचा था कि 'यहाँसे भूखा जाता हूँ तो क्या परवा है, महात्माजीके पास पहुँचते ही भरपेट खानेको मिल ही जायगा और मेरी दुर्दशा देखकर दयालु स्वामीजी मुझे आश्रममें अपने पास रख लेंगे।' परन्तु यहाँ पहुँचकर उसको उलटा ही अनुभव हुआ! खानेकी बात तो दूर रही, स्वामीजीने पानी भरनेको भी उसे ही भेज दिया। 'हाय! कितना कष्ट है, अब तो भूखा नहीं रहा जाता'—ब्राह्मणके मुखसे ऐसे शब्द आप-से-आप निकल पड़े और बारम्बार भूखकी ही याद आने लगी! भूखके मारे धीरे-धीरे उसके वैराग्यका जोश उतरने लगा। इससे तूँबेमें जल लेकर वापस आते समय उसके पैरोंने चलनेसे जवाब दे दिया। पेटमें आग लग रही थी, नकली वैराग्य कबतक ठहरता? बड़ी मुसीबतसे ज्यों-त्यों करके ब्राह्मण जल लेकर आश्रममें पहुँचा। आकर देखता है कि शान्तोबा और उनकी पत्नी दोनों बैठे भोजन कर रहे हैं। यह देखते ही उसके धीरजका बाँध टूट गया। जठराग्निके कठोर अनुशासन-से उसकी लज्जा भी जाती रही। उसने जलका पात्र किसी तरह नीचे पटककर कहा कि—'महाराज! मुझे बड़ी भूख लगी है, कृपा करके बहुत जल्दी मुझे कुछ खानेको दो।' ब्राह्मण एक हाथसे पेट और

दूसरेसे मुख दिखाकर कातर-स्वरसे खानेको माँगने लगा। शान्तोबाने उसे दो-चार फल दे दिये। अब ब्राह्मणका मिजाज ठिकाने नहीं रहा। पेटकी भड़की हुई आग दो-चार फलोंसे कैसे बुझ सकती थी, वह एकाएक जोरसे पुकार उठा कि 'अरे! मैं तुम्हारा अतिथि भूखों मर रहा हूँ और तुम दो-चार फल देकर ही मुझे टाल रहे हो!'

ब्राह्मणकी अवस्था देखकर शान्तोबा महाराजको मन-ही-मन कुछ कष्ट अवश्य हुआ, परन्तु साथ ही उसकी मूर्खतापर उन्हें हँसी भी आ गयी! थोड़ी देर बाद उन्होंने ब्राह्मणसे कहा—'भाई! तुमने तो वैराग्य लिया है न? खाने-पीनेके लिये इतनी लालसा रक्खोगे तो वैराग्यकी रक्षा कैसे होगी? भाई! वैराग्य बड़ा कठिन है, जिस समय जो कुछ मिल जाय, उसीमें सन्तोष मानना चाहिये। वैरागीको थोड़ा मिले या ज्यादा, उसे कभी असन्तोष नहीं करना चाहिये।'

शान्तोबाके इन वचनोंको सुनते ही ब्राह्मणका सारा वैराग्य हवा हो गया। उसने अपने कियेपर पश्चात्ताप करते हुए घर लौट जानेका विचार किया और वह मन-ही-मन कहने लगा कि 'मुझे ऐसा भूखमरा वैराग्य नहीं चाहिये, इससे तो घर ही अच्छा था।' यों कहकर वह अपने कपड़े, कम्बल और लोटेको लेने चला, परन्तु वहाँ जाकर देखता है तो कुछ भी नहीं है। लोटेका तो पता ही नहीं था, कपड़े और कम्बलके कुछ फटे टुकड़े हवामें उड़ रहे थे। ब्राह्मण जब जल भरने गया था, तब पीछेसे शान्तोबाजीने यह व्यवस्था करा दी थी। बिना

अपराध ब्राह्मणीको तंग करनेवाले मर्कट-वैरागीको सीधी राहपर लानेके लिये ही यह उपाय रचा गया था ।

शान्तोबाजीके उपायने काम किया। ब्राह्मणको जब अपने कम्बल-कपड़ोंसे हाथ धोना पड़ा तब तो उसके दुःखका पार नहीं रहा । भूखका कष्ट तो था ही, ऊपरसे यह विपत्ति और आ गयी। अब वह सहन नहीं कर सका और एक छोटे बालककी भाँति रो पड़ा । इस समय उसे वैराग्यकी कठोरताका पूरा अनुभव हो गया । उसने रोते-रोते शान्तोबासे कहा—'महाराज ! अगर मैं अपने घर होता तो इतनी देरमें मेरी घरवाली मुझे कम-से-कम दो-तीन बार भोजन करा चुकती। मुझे अपनी मूर्खताका अब पूरा पता लग चुका । पर मैं तो निरपराध ब्राह्मणीसे लड़कर आया था, अब वहाँ किस मुँहको लेकर वापस जाऊँ? कहाँ जाकर इस पेटकी आगको शान्त करूँ ? अरे ! कृपापूर्वक मुझे यह तो बतला दो ।'

शान्तोबाने कहा—'भाई ! वैराग्यका मार्ग बड़ा टेढ़ा है। इस मार्गपर चलनेके लिये आत्मसंयमकी बड़ी आवश्यकता है । जो जरा-जरा-से दुःखमें घबड़ाता और बात-बातमें आँसू बहाने लगता है, उससे वैराग्यका पालन नहीं हो सकता । सच्ची दृढ़ता और पूरी सावधानी रखनेपर ही वैराग्यके मार्गपर चला जा सकता है। भाई ! तुमने अभी उतनी योग्यता नहीं प्राप्त की है । अतएव तुम्हारे लिये गृहस्थाश्रम ही कल्याणकारी है । अपने घर जाकर गृहस्थ-धर्मका यथार्थ पालन करो । इसीसे तुम्हारा मङ्गल होगा । जिसके प्राप्त होनेपर सब तरहकी भूख मिट जाती है, उस धर्मनिष्ठाको धारण करनेसे ही तुम्हारा मनुष्य-

जन्म सार्थक होगा । चलो, मैं तुम्हारे साथ जाकर तुम्हारी घरवालीको समझा आता हूँ और ऐसा प्रबन्ध कर देता हूँ कि आजसे वह तुम्हारे साथ सदा बहुत अच्छा बर्ताव करेगी ।' इतना कहकर ब्राह्मणके साथ शान्तोबा उसके घर गये और पति-पत्नीका झगड़ा निपटाकर लौटते समय उन्होंने ब्राह्मणसे कहा कि—'देखना, अबसे बेकाम अपनी सहधर्मिणीके साथ कभी कलह न करना । श्रीहरिकी कृपासे तुम्हारा संसार शान्तिमय बन जायगा ।' दम्पतिने संत शान्तोबाको प्रणाम किया । शान्तोबा अपने आश्रमको लौट आये । तदनन्तर पतिपरायणा ब्राह्मणीने भूखे पतिको बड़े आदरके साथ भोजन कराया । पेटभर खा लेनेपर ब्राह्मणके जीमें जी आया और भविष्यमें ऐसी पत्नीसे झगड़ा करके कभी वैराग्यका नाम भी न लेनेका उसने निश्चय किया ।

(५)

दक्षिणमें पण्ढरपुर प्रसिद्ध तीर्थ है । उसे भू-स्वर्ग कहा जाता है । प्रत्येक एकादशीको वहाँ भक्तोंका मेला लगता है । उस समय वहाँ सैकड़ों-हजारों—यहाँतक कि आषाढ़ी एकादशीको तो लाखों भक्तमण्डलियाँ इकट्ठी होती हैं और प्रभुके नाम-सङ्कीर्तनसे दशों दिशाएँ गुँजा देती हैं । एक बार शान्तोबाकी भी एकादशीके दिन पण्ढरपुर जाकर इस दिव्य आनन्दमें सम्मिलित होनेकी इच्छा हुई । शान्तोबा अपनी पत्नी और कुछ ब्राह्मणोंको साथ लेकर बाजे-गाजेके साथ श्रीहरिनाम-सङ्कीर्तनसे शुष्क मरुमय संसारमें स्वर्गीय सुधा बरसाते हुए चले । भजन करते-करते वे नरसिंहपुर नामक गाँवमें पहुँचे । उस दिन दशमीकी

रात्रि थी। पण्ढरपुर और नरसिंहपुरके बीच एक नदी पड़ती है। जोरकी बरसात होनेसे नदीमें बाढ़ आयी हुई थी। उसकी भीषण तरङ्गें उछल-उछलकर आसमानसे बातें कर रही थीं। न तो कहीं कोई नाव और न कोई केवट ही था। तैरकर जानेके सिवा उस पार पहुँचनेका कोई उपाय नहीं है, परन्तु नदीकी भीषण मूर्तिको देखकर उसके पास जानेकी शान्तोबा और उनकी पत्नीको छोड़कर अन्य किसीकी भी हिम्मत नहीं होती। उस दिन दशमीकी रात्रि थी, कल ही एकादशी है। प्रातःकाल होते-होते पण्ढरपुर पहुँचकर भगवान्का पूजन करना चाहिये। इसलिये इसी समय नदीके पार जाना आवश्यक है। शान्तोबाने देखा कि नदीकी प्रचण्ड तरङ्गोंको देखकर सभी साथी भयभीत हो रहे हैं, अतएव वह उन्हें जोश दिलाते हुए बोले—'अरे, तुम इस क्षुद्र नदीकी दो-चार तरङ्गोंको देखकर ही इतने डर गये? जिनका नाम ही जीवको इस अपार संसार-सागरसे पार कर देता है, वह श्रीहरि जब हमलोगोंके सहायक हैं तब तुमलोग इतने डर क्यों रहे हो? अपनी सारी चिन्ताओंको उस चिन्तामणिके चरणकमलोंमें अर्पण करके उसके नामकी घोषणा करते हुए बस, निर्भय चित्तसे मेरे पीछे-पीछे चले आओ। मरने-जीनेका विचार बिल्कुल न करो। चलो—श्रीहरि-नामकी गर्जनासे नदीके जल और गगन-मण्डलको कँपा दो।' यों कहकर शान्तोबा 'हरि-हरि' ध्वनि करते हुए निर्भय हृदयसे नदीमें कूद पड़े। पतिव्रता पत्नीने भी हरि-नाम उच्चारण करते हुए पतिका अनुसरण किया। दम्पतिके पीछे-पीछे सारे ब्राह्मण भी श्रीहरि-ध्वनि करते हुए कूद पड़े। श्रीहरि-नामकी जय-घोषणा करते-करते सब ऐसे बेसुध हो गये कि किसीको शरीरकी भी सुध नहीं रही। उनके हृदयमें आनन्दकी अपूर्व ज्योति

प्रकट हो गयी। श्रीहरि-नामकी पवित्र उच्च ध्वनि दशों दिशाओंमें फैल गयी। शुद्ध सरल अन्त:करणसे निकले हुए हरि-नाममें अपूर्व आकर्षण-शक्ति थी। उस शक्तिके प्रभावसे नामके नामीको वहाँ आना पड़ा। भक्तवत्सलकी भक्तप्रियता भुवनविख्यात है। देखते-ही-देखते नदीके बीचोबीच एक रास्ता हो गया। अब उस पार पहुँचनेमें कुछ भी कठिनाई नहीं रही। स्वयं श्रीहरि जिनके सहायक हों, जिनका उन्हींपर पूरा भरोसा हो, उनके मार्गमें कोई भी बाधा क्यों आने लगी? दृढ़ प्रभु-विश्वासका फल ऐसा ही विलक्षण हुआ करता है। आज उसीके प्रभावसे शान्तोबा अपने समस्त साथियोंसहित घोर अँधेरी रातको भीषण नदीसे अनायास तर गये। भव-सागरसे तार देनेवाले चतुर केवटका आश्रय पाकर इस छोटी-सी नदीसे तर जाना कौन बड़ी बात थी?

प्रात:काल होनेके पहले ही सब परम आनन्दपूर्वक पण्ढरपुर पहुँचकर हरि-कीर्तन करने लगे। अरुणोदयके बाद सबने श्रीचन्द्रभागामें स्नान किया। तदनन्तर भक्त पुण्डरीककी पूजाकर सब लोग भगवान् विट्ठलके दर्शनार्थ गये। पुण्डरीकके लिये ही भगवान् पाण्डुरङ्ग प्रकट हुए थे। इससे पण्ढरपुरमें पहले पुण्डरीककी ही पूजा हुआ करती है। भगवान् श्रीविट्ठलनाथजीके दर्शनसे सबको अपार आनन्द हुआ, शान्तोबा तो तनकी सुधि भूलकर प्रेमावेशमें मतवाले हो गये। उनके देहमें प्रेमके सात्त्विक भावोंका विकास हो गया। वह कभी हँसने, कभी रोने, कभी पुकारने और कभी दोनों हाथ उठाकर नाचने लगे!

अन्तमें रोते-रोते उन्होंने बड़े ही करुण शब्दोंमें भगवान्‌से प्रार्थना करते हुए कहा—'मेरे प्यारे! तुम्हारी ही प्रेरणासे मैंने घर-बार छोड़ा

था। प्रभो ! अब मुझको कभी भुला न देना। अपने चरणकमलोंका उदार आश्रय देकर अब कभी इस दासका त्याग न कर देना। श्यामसुन्दर ! तुम्हारी अपार महिमा है। शेषनाग सहस्र मुखोंसे अहर्निश गुण-गान करते हुए भी अबतक उसका पार नहीं पा सके हैं। नाथ ! तुम्हारी कृपासे आज मैं कृतार्थ हो गया हूँ। अब, हे मेरे स्वामी ! ऐसा करो, जिसमें मैं सदा-सर्वदा एक दासकी तरह तुम्हारे चरणकमलोंमें ही पड़ा रहूँ। मुझे सदा अपने पास रहनेवाले दासोंकी श्रेणीमें भर्ती कर लो, मेरे प्रभो !'

यों कहते-कहते शान्तोबाका बाह्य ज्ञान फिर विलुप्त हो गया। भगवान्‌की दयालुता असीम है, एक बार जो सच्चे मनसे उनके चरणोंमें अपनेको सौंप देता है, भगवान् उसे कभी नहीं छोड़ते। उनके सम्मुख होना ही कठिन है। सम्मुख हो जानेपर तो वे तुरंत उसे ग्रहण कर सदाके लिये अपने त्रिभुवनपावन चरणोंमें स्थान दे देते हैं। शान्तोबाने दिव्यदृष्टिसे देखा कि भगवान् श्रीविट्ठल उनके हृदय-मन्दिरमें विराज रहे हैं और मन्द-मन्द हँसते हुए आज्ञा कर रहे हैं कि 'मेरे प्यारे भक्त ! तू यहाँ रह, तुझे इस अवस्थामें देखकर आज मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है। मैं जब प्रेमके पगले अपने प्यारे भक्तोंको दिव्य प्रेमोन्मादकी अवस्थामें देखता हूँ, तब मुझे जो आनन्द होता है, वह अनिर्वचनीय है।' धन्य प्रभो !

श्रीहरिकी आज्ञासे शान्तोबा अपनी सहधर्मिणीसहित पण्ढरपुरमें रहने लगे। उनका शेष जीवन भगवत्प्रेमकी उन्मत्ततामें ही बीता !

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !

भक्त नीलाम्बरदास

विषय और भगवान्—इन दोनोंमेंसे किसका आकर्षण अधिक है ? इस प्रश्नके उत्तरमें बहुत लोग यह कहा करते हैं कि विषयका आकर्षण ही अधिक है । हम-सरीखे संसारमें आसक्त मनुष्योंका ऐसा कहना स्वाभाविक ही है, परन्तु तत्त्वज्ञानी महात्माओंको इस बातमें कोई सार नहीं दीखता । वे इस बातको जानते हैं कि किसी एक अज्ञात कारणसे मनुष्य जब अपने आस-पासकी वस्तुओंको और अपनेको सर्वथा भुलाकर 'भगवान् भगवान्' पुकारता हुआ दीवानेकी तरह यथारुचि जहाँ-तहाँ विचरता है, उस समय इस संसारका कोई भी पदार्थ उसको अपनी ओर नहीं खींच सकता । इस प्रकार भगवान्में आत्मभावको भुला देनेकी शक्ति है, इसीसे तो उनको 'भुवनमोहन' कहते हैं । सौभाग्यसे जो उनके आकर्षणसे खिंच जाते हैं, उन्हींको उनके प्रभावका पता लगता है । हम-जैसे साधारण मनुष्य अभीतक उनकी ओर आकर्षित नहीं हुए, इसीसे उनका प्रभाव यथार्थरूपसे नहीं जान सके हैं । परन्तु जिन भाग्यवानोंको उनके आकर्षणका अनुभव है, उनका सत्सङ्ग करनेसे हम भी भगवान्के असीम प्रभावका प्रकाश देख सकते हैं ।

भक्त नीलाम्बरदासके सौभाग्यकी सीमा नहीं है । वे 'भुवन-मोहन' की मोहिनीसे उनकी ओर खिंच गये हैं और उनके प्रभावको जान गये हैं । नीलाम्बरदास सब तरहसे सुखी थे; उनके स्त्री थी, पुत्र था, धन था, पूरा कुटुम्ब था, मान-प्रतिष्ठा आदि सब कुछ था । परन्तु जिस क्षणसे वे एक मोहन-मन्त्रसे आकर्षित होकर भगवान्में आसक्त हुए, उसी क्षणसे अन्य सारी वस्तुओंके बन्धन ढीले पड़ गये । वे अपनेको स्त्री,

पुत्र, धन, मान आदि मायाके बन्धनोंसे बँधे हुए और उनके सङ्गमें रहकर अपने जीवनको व्यर्थ बीतता हुआ समझने लगे। उनके मनमें बारम्बार यह विचार आने लगा और अन्तमें उन्होंने सब कुछ त्यागकर घरसे चले जानेका निश्चय कर ही लिया!

नीलाम्बरदासका यह निश्चय कंगालके मनोरथकी भाँति केवल मनमें ही उत्पन्न होकर वहीं लय नहीं हो गया। इस निश्चयने उनको सच्चा विषय-वैरागी और संसार-त्यागी बना दिया! अहा! ऐसा न हो तो भगवान्‌के आकर्षणका प्रभाव ही क्या है?

नीलाम्बरदासने घर छोड़कर व्याकुल चित्तसे श्रीजगन्नाथजीका रास्ता लिया। वे भगवान्‌के दर्शन करनेके लिये बहुत ही व्याकुल थे। उनकी स्थिति स्नेहमयी जननीसे बिछुड़े हुए बालककी-सी थी। जैसे छोटा बालक माताको याद करता और याद कर-कर रोया करता है, वैसे ही नीलाम्बरदासके मनमें भी निरन्तर भगवान्‌की ही याद बनी रहती थी और वे उन्हींके लिये बिलख-बिलखकर रोया करते। वे भगवान्‌का स्मरण करते हुए जैसे बने वैसे ही शीघ्र श्रीजगन्नाथपुरी पहुँचनेकी इच्छासे जोर-जोरसे चल रहे थे। उनको दिशाका ज्ञान नहीं था, आहार-निद्राका भी पता नहीं था, आँखें मूँदे झूमते हुए मनमें भगवान्‌का स्मरण करते-करते आगे बढ़े चले जा रहे थे। प्रेमीका प्रेमास्पदसे मिलनेके लिये ऐसा ही दीवानापन हुआ करता है! नीलाम्बरदासके गाँवसे श्रीजगन्नाथपुरी समीप नहीं थी, कहाँ उत्तर-प्रान्तमें उनका घर और कहाँ दक्षिण-प्रान्तमें जगन्नाथपुरी। परन्तु इन्हें चलते रहनेके सिवा और किसी बातकी भी सुधि नहीं थी। इस तरह बहुत-से पर्वत-पहाड़, नदी-नाले और निर्जन कठोर वनोंको लाँघते हुए वे गङ्गाजीके

तीरपर आ पहुँचे। वर्षाऋतु थी, गङ्गाजीमें बाढ़ आ रही थी, कहीं कोई किनारा नहीं दीखता था। गङ्गाजीकी उछलती हुई तरङ्गोंकी ओर देखनेकी भी हिम्मत नहीं होती थी, देखते ही हृदय भयसे काँप उठता था।

नीलाम्बरदासको नदीके उस पार जाना है, नौका बिना पार जानेका कोई उपाय नहीं है, पर नौका कहीं देखनेको भी नहीं है। नीलाम्बरदास मन-ही-मन बहुत घबड़ाये। उस समय उनके दु:खका पार नहीं था। वे अनेक गाँवों और वनोंको लाँघकर चले आ रहे थे। शरीर खूब थक गया था। सूर्यदेव अस्ताचलको जाना चाहते थे। इससे जल्दी ही उस पार पहुँचना आवश्यक था, परन्तु वे जिस स्थानपर खड़े थे, वहाँ बस्तीका होना तो दूर रहा, मनुष्यकी गन्धतक भी नहीं थी। ऐसे निर्जन स्थानमें घाट कितनी दूर है इस बातको भी किससे पूछे? ऐसी स्थितिमें श्रीहरिके स्मरणके सिवा और कोई चारा नहीं था। नीलाम्बरदास भगवान्‌का स्मरण करने लगे।

भजन करते-करते कुछ समय बीत गया; इतनेमें ही एक मछुवा नदीमें जाल फेंककर मछली पकड़ता-पकड़ता नौकासमेत वहाँ आ पहुँचा। उसे देखकर नीलाम्बरदासको बड़ा आनन्द हुआ। वे भगवान्‌को धन्यवाद देने लगे और नाववालेको पुकारकर कहने लगे कि 'ओ भाई! कृपा करके नावको जरा इस ओर ले आ और इस विपत्तिमें पड़े हुए ब्राह्मणको उस पार उतारकर उपकार कर! पैसोंके लिये मत घबड़ा! पार पहुँचनेपर तू जो माँगेगा सो जरूर दे दिया जायगा।'

नीलाम्बरदासकी आवाज सुनकर मछुवेने नाव किनारेकी ओर चलायी और मीठा-मीठा बोलकर नीलाम्बरदासको उसने नौकामें बैठा लिया। नावपर चढ़ते ही नीलाम्बरदासके आनन्दका पार नहीं रहा। वे मन-ही-मन भगवान्‌को असंख्य धन्यवाद देने लगे। इधर ब्राह्मणको

नावमें बैठाकर मछुवा भी बहुत खुश हुआ और मन-ही-मन भगवान्‌को धन्यवाद देने लगा। परन्तु दोनोंके धन्यवादके कारणोंमें बड़ा भेद था। नीलाम्बरदास भगवान्‌के शीघ्र दर्शन पानेके लिये तड़प रहे थे, ऐसी स्थितिमें भगवान्‌ने नाव भेजकर गङ्गाके उस पार पहुँचानेका प्रबन्ध कर दिया, वह इस बातके लिये भगवान्‌को धन्यवाद दे रहे थे। और मछुवा एक असहाय, निर्बल मनुष्यको पंजेमें फँसा हुआ शिकार समझकर ईश्वरका उपकार मान रहा था। उसने नीलाम्बरदासको नदीके बीचमें ले जाकर मार डालने और उनके पास जो कुछ था सो छीन लेनेका विचार कर लिया था, इसीसे वह मन-ही-मन फूल रहा था।

बेचारे मूर्ख मछुवेको यह पता नहीं था कि नीलाम्बरदासका जीवन-धन, उनका सर्वस्व उनके कन्धेकी झोलीमें नहीं, परन्तु हृदयकी ऐसी गम्भीर झोलीमें है, जहाँसे उसे कोई भी चुरा नहीं सकता। उस बेचारेको नीलाम्बरदासकी स्थितिका पता कैसे होता? वह तो उन्हें साधारण मुसाफिरकी तरह रुपयेकी थैली साथ लिये घूमनेवाला समझकर ही मारकर धन लूटनेकी इच्छासे नावको नदीके बीचमें ले जाने लगा! मछुवेको किनारेसे हटकर दूसरी ही ओर जाते देखकर नीलाम्बरदासने कहा—'भाई! तू बड़ा साहसी आदमी मालूम होता है, नहीं तो ऐसे तूफ़ानमें नदीके अंदर नाव लानेकी भी हिम्मत कौन कर सकता है? परन्तु भाई! अब सूर्यदेव छिप रहे हैं, दिन रहते-रहते किनारे पहुँच जाना अच्छा है इसलिये नौकाको किनारेकी ओर ले चल!'

परन्तु उनकी बात कौन सुनने लगा? मछुवेके मनमें तो दूसरी ही बात थी, अतएव उसने नौकाको नदीके बीचोबीच चलाना जारी रक्खा। नीलाम्बरदासकी बातोंके जवाबमें उसने मुसकराकर मुँह फिरा लिया। मछुवेका यह भाव देखकर नीलाम्बरदास उसके कुविचारको

तुरंत ही समझ गये। एक बार तो वे कुछ घबड़ाये परन्तु ऐसे समय घबड़ाना अच्छा नहीं, यह सोचकर उन्होंने ईश्वरपर भरोसा करके साहसके साथ कहा—'भाई ! तेरा क्या उद्देश्य है, क्या तू मुझे मार डालना चाहता है ? अच्छी बात है, मैं भी देखूँगा, तू मुझे कैसे मारता है ?'

नीलाम्बरदासके वचन सुनकर मछुवेने जोरसे हँसकर गम्भीर स्वरसे कहा—'ओहो ! तुम तो बड़े धर्मान्ध माळूम होते हो, पर अब तुम्हारा काल समीप आ पहुँचा है, बस, जरा-सी देर है। लो, अब तुम्हें जिसको याद करना हो, कर लो, तुमको अभी नीलाचल पहुँचाता हूँ।'

नीलाम्बरदासने मछुवेके वचन सुने, वे कुछ शंकासे घबड़ाये। मरनेकी घबड़ाहट नहीं थी, वह थी भगवान्‌का दर्शन होनेसे पहले ही मर जानेकी। वे एकान्त-चित्तसे निराधारके आधार और निर्बलके बल रामका स्मरण करने लगे। वे बोले—'हे भगवन् ! हे दीनदयालु ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो, तुमने पहले कितने शरणागतोंके दुःख दूर किये हैं, आज तुम्हारे शरणमें पड़े हुए इस ब्राह्मणके भी दुःखको दूर कर दो। तुम्हारी दयारूपी नौकाके द्वारा इस विपत्ति-सागरमें पड़े हुएको बचा लो ! प्रभो ! बचा लो ! एक बार दर्शन देनेके बाद जो कुछ भी हो जाय परन्तु इससे पहले न मरने दो।'

भक्तभावन भगवान्‌ने तुरंत आर्त भक्तकी पुकार सुनी। ब्राह्मणके अन्तरका दुःख जानकर उसी समय वे एक नौजवान राजपूत वीरके स्वरूपमें गङ्गा-किनारे प्रकट होकर उच्चस्वरसे मछुवेको पुकारकर कहने लगे—'अरे ओ मछुवे ! इधर आ, यदि जीवनकी आशा रखता हो तो तुरंत इधर चला आ, नावको जल्दी किनारे लगा।'

श्रीहरिके कण्ठकी ध्वनि ऐसी-वैसी नहीं थी, उसे सुनते ही मछुवेकी नानी मर गयी, भयसे उसका शरीर थर-थर काँपने लगा, नाव

चलाना कठिन हो गया, तो भी वह सुनी-अनसुनी करके धीरे-धीरे नाव चलाता रहा। भगवान्‌ने फिर पुकारकर कहा, परन्तु जब उसने नहीं सुना तो अन्तमें सरसराता हुआ एक बाण आकर नौकामें लगा। धनुषके शब्दसे मछुवा घबड़ा गया और बाणके दिव्य प्रकाशसे उसकी आँखें मानो जलने लगीं। वह विचारने लगा—'हाय हाय! अब क्या होगा? यदि ब्राह्मणने उससे सारा हाल कह दिया, तब तो वह मेरा काम तमाम ही कर डालेगा। परन्तु नाव किनारे न ले जानेमें भी बचाव नहीं है, वह बाणसे मार डालेगा।'

विचार करते-करते उसने नौकाका मुख किनारेकी ओर घुमाया और वहाँ पहुँचकर वीर राजपूतके चरणोंमें लोट गया। नीलाम्बरदास यह देख-सुनकर स्तब्ध हो गये। उन्हें पता नहीं था कि यह स्वप्न है या सत्य! तदनन्तर उस मायावी क्षत्रिय वीरने गुस्सेमें भरकर मछुवेको फटकारते हुए कहा—'दुष्ट! मैं सदा-सर्वदा यहाँ घूमकर चौकी दिया करता हूँ और तुझ-सरीखे लुटेरोंको पकड़ता हूँ। बता, इस समय मैं तेरा सिर उड़ा दूँ तो तुझे कौन बचावेगा?'

क्षत्रियरूपधारी भगवान्‌के लीला-वचन सुनकर मछुवेके प्राण हवा हो गये। वह मुर्देकी तरह उनके चरणोंमें पड़ा रहा। तब भगवान् शान्त होकर नम्र स्वरसे नीलाम्बरदाससे कहने लगे—'हे ब्राह्मण! तुम इस नावसे उतर जाओ। जानते हो मैं कौन हूँ? मैं इस प्रदेशका पहरेदार हूँ और इस किनारेकी तथा उपवनकी रक्षा करता हूँ। जो इस वनमें किसीको हैरान करता है, मुसाफिरोंको लूटता है और धन छीनकर उन्हें मार डालता है, उसे उचित दण्ड देनेके लिये ही मैं यहाँ रहता हूँ। मुसाफिरोंको ऐसे दुष्टोंसे बचानेके लिये ही मैंने आज इस वेषमें यह धनुषबाण धारण किये हैं।'

क्षत्रियरूपधारी भगवान्‌के वचन सुनकर नीलाम्बरदास कहने लगे—'भाई ! आज मेरे बड़े भाग्य थे, जो मैं तुम्हारा दर्शन कर सका। तुमने ही आज मुझे मौतके मुखसे बचाया है। अतएव मैं तुम्हारा उपकार मानता हूँ। मेरा मन इस समय भगवान् श्रीजगन्नाथजीके दर्शनके लिये अकुला रहा है, इसीलिये मैं सब कुछ छोड़-छाड़कर निकल पड़ा हूँ, अतएव दया करके मुझे गङ्गाजीके उस पार जानेका रास्ता बतला दो, जिससे कि मैं अपने प्राणवल्लभ श्रीनीलाचलनाथके दर्शन कर सकूँ।'

हाय ब्राह्मण ! तेरे प्राणनायक--प्राणवल्लभ तेरे सामने ही तो खड़े हैं, उन्हींके साथ तो तू बातचीत कर रहा है। क्या अब भी तू उन्हें नहीं पहचान सका? हा ! कहाँसे पहचानता? जबतक वे अपनी पहचान नहीं कराते, तबतक उन्हें कोई भी नहीं पहचान सकता ! जबतक उनकी कृपा नहीं होती, जबतक इच्छा नहीं होती, तबतक चाहे जितना जप-तप, योग-याग किया जाय, सभी व्यर्थ होता है। करोड़ों उपाय करनेपर भी उनको नहीं पहचाना जा सकता ! 'सो जाने जेहि देहु जनाई।'

नीलाम्बरदासके वचन सुनकर भगवान्‌ने कहा, 'हे ब्राह्मण ! जब तुमने श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करनेके लिये ही घर छोड़ा है, तो तुम्हारी इच्छा पूरी हुए बिना कभी नहीं रह सकती। सारे जगत्‌के नाथ भगवान् तुम्हारी सहायता करेंगे। इस क्षुद्र नदीके पार जानेकी तो बात ही कौन-सी है, सारे भवसागरको सहज ही लाँघ जानेका अधिकार तुमने पा लिया है।'

नीलाम्बरदासको आश्वासन देनेके बाद भगवान्‌ने मछुवेसे कहा—'मुर्देकी तरह यहाँ पड़े रहनेसे कुछ नहीं होगा, उठ, इस ब्राह्मणको

तुरंत उस पार पहुँचा दे । अभी मेरे देखते-देखते इनको पहुँचाकर आ नहीं तो यह धनुष देखा है न ? उठ जल्दी खड़ा हो ।'

क्षत्रियवेषधारी भगवान्‌के मुखसे इन वचनोंको सुनकर मछुवेके मानो प्राण लौट आये । वह एकदम उठकर भगवान्‌को प्रणाम करने लगा और अपने अपराधके लिये क्षमा माँगने लगा । अन्तमें नीलाम्बर-दासको नावमें बैठाकर उसने नाव चलायी । अब मछुवेका मन बिल्कुल पलट गया है । उसके मनमें किसी तरहका बुरा विचार नहीं है । उसके मुँहसे अब कोई कटुवचन नहीं निकलते । भक्तके सङ्ग और भगवान्‌के दर्शन होनेसे उसके सारे अवगुण सद्‌गुणोंके रूपमें बदल गये हैं और इसलिये वह श्रीहरिके पवित्र नामका गान करता हुआ नाव खे रहा है ।

देखते-देखते ही नौका गङ्गाजीके उस किनारेपर जा लगी । नीलाम्बर दास उतर पड़े । उधर भगवान् भी अन्तर्धान हो गये । मछुवेके मनमें अपने कुकृत्यके लिये बड़ा पश्चात्ताप है । वह नीलाम्बरदासके चरणोंमें लोटकर क्षमा माँगने लगा । नीलाम्बरदास प्रसन्नतासे उसे आशीर्वाद देकर आगे बढ़े । अनेक गाँवों, शहरों, पहाड़ों, जङ्गलों और नदी-नालोंको पार करते हुए कुछ दिनों बाद वे श्रीजगन्नाथपुरीमें पहुँचे।

दैवयोगसे इसी दिन रथयात्रा थी, सारी पुरीमें आनन्द और उत्साह छाया हुआ था । 'हरि हरि' और 'जय जय' के घनघोर घोषसे आकाश भर रहा था । बाजोंकी ध्वनि और रमणियोंके मधुर गीतोंके अमृतमय कर्णप्रिय स्वरोंसे सारा शहर व्याप्त था । नृत्य-कीर्तन तो कभी थमता ही नहीं था । जिधर कान जाते थे उधर ही आनन्द-कोलाहल सुनायी पड़ता और जिस ओर नेत्र जाते थे उसी ओर आनन्दोल्लासके दृश्य दिखायी पड़ते थे । श्रीबलराम, श्रीसुभद्रा और श्रीजगन्नाथजी तीनों

पृथक्-पृथक् उत्तम रथोंमें विराजित हैं । भक्तगण बड़े आनन्दसे रथ खींच रहे हैं और गम्भीर गर्जनाके साथ तीनों रथ चल रहे हैं। सेवकगण दोनों हाथ उठाकर 'मणिमा ! मणिमा !!' पुकारते हुए नाच रहे हैं। आनन्दके आवेशसे कुछ लोग ताली बजा-बजाकर कूद रहे हैं, कुछ आँसुओंकी वर्षा कर रहे हैं तो कुछ जडवत् निश्चेष्ट हो गये हैं। इसी समय नीलाम्बरदास रथके पास जा पहुँचे । आज उनके आनन्दका पार नहीं है, आनन्दके आँसू अविराम बह रहे हैं। दीर्घकालतक यात्रा करके उन्होंने रास्तेमें भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी तथा अन्य अनेक प्रकारके विघ्न और क्लेश सहे थे, वे सब एकदम भूल गये । प्रेमाश्रुओंके पवित्र अभिषेककी यही महिमा है ।

नीलाम्बरदासने श्रीजगन्नाथजीके प्रेममें तन्मय होकर अपने मनकी बात प्रभुसे कही । भक्त और भक्तभावन भगवान्की चार आँखें होते ही कुछ गुप्त बातचीत हो गयी और देखते-ही-देखते भक्त नीलाम्बरदास श्रीप्रभुके रथके सामने गिर पड़े, उन्हें पड़ते देखकर सेवकगण उनके पास गये, परन्तु वे देखते हैं कि उनके शरीरसे प्राण-पखेरू उड़ गया है । जो पक्षी क्षणभर पहले 'हरे कृष्ण राम राम, हरे कृष्ण राम राम' की ध्वनि कर रहा था, वह बोलता-बोलता ही न मालूम कहाँ उड़ गया । अवश्य ही भगवान्के परम धाममें पहुँचा होगा ।

नीलाम्बरदासकी मृत्युका समाचार सब ओर फैल गया। उनके मरण-वृत्तान्तको सुनकर सभी आश्चर्यचकित होकर ऐसे दुर्लभ मरणकी प्रशंसा और ईर्ष्या करने लगे । अहा ! भक्तकी कैसी अपार महिमा है ! उनकी मृत्यु भी इस मृत्युलोकमें अमर होकर रहती है । आज भी उनके मरणकी जय-घोषणा श्रीजगन्नाथपुरीमें जगह-जगह सुननेमें आती है
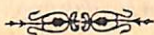
भक्तोंके लक्षण

जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित एवं स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित एवं अहंकारसे रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है तथा जो ध्यानयोगमें युक्त हुआ निरन्तर लाभ-हानिमें सन्तुष्ट है तथा मन और इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है तथा जिससे कोई भी जीव उद्वेगको प्राप्त नहीं होता है और जो स्वयं भी किसी जीवसे उद्वेगको प्राप्त नहीं होता है तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिकोंसे रहित है वह भक्त मुझको प्रिय है और जो पुरुष आकाङ्क्षासे रहित तथा बाहर-भीतरसे शुद्ध और चतुर है अर्थात् जिस कामके लिये आया था उसको पूरा कर चुका है एवं पक्षपातसे रहित और दुःखोंसे छूटा हुआ है वह सर्व आरम्भोंका त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है और जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोच करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंके फलका त्यागी है वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है और जो पुरुष शत्रु-मित्रमें और मान-अपमानमें सम है तथा सर्दी-गर्मी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें सम है और सब संसारमें आसक्तिसे रहित है तथा जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला और मननशील है एवं जिस-किस प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें सदा ही सन्तुष्ट है और रहनेके स्थानमें ममतासे रहित है वह स्थिरबुद्धिवाला भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है।

—भगवान् श्रीकृष्ण